सौ वर्ष कैसे जियें

स्वामी शिवानन्द

सौ वर्ष कैसे जियें

HOW TO LIVE HUNDRED YEARS

का हिन्दी रूपान्तर

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका

शिवानन्द राधिका अशोक

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, पिन २४९ १९२' से प्रकाशित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

प्रकाशकीय

इस छोटी-सी किन्तु विलक्षण रचना में श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने, जो एक कुशल चिकित्सक, दक्ष योगी, मनोवैज्ञानिक और एक सिद्ध ऋषि थे, मनुष्य को शतायु बनने के लिए कुछ चिकित्सकीय, यौगिक, वेदान्तिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेदिक और प्राकृतिक विधियों को बताया है। मनुष्य के पूर्ण स्वास्थ्य तथा दीर्घ आयु के लिए यह रचना अत्यन्त प्रेरक, सूचक और बहुमूल्य सिद्ध होगी।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादिका का विनम्र निवेदन

परम पूज्य गुरुदेव कहते थे कि मानव-जीवन का लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार या भगवद्-साक्षात्कार। चाहे व्यक्ति सांसारिक जीवन बिताये अथवा वह आध्यात्मिक पथ का अनुकरण करे, दोनों के लिए स्वस्थ शरीर होना आवश्यक है। यदि आपका शरीर स्वस्थ नहीं होगा, तो आप कोई कार्य भली प्रकार नहीं कर सकेंगे। आध्यात्मिक साधना हेतु स्वस्थ शरीर प्रथम पूर्वापेक्षा है।

इस पुस्तक में गुरुदेव के एक चिकित्सक तथा योगी-दोनों रूपों का समावेश है। इसमें वे आयुर्वेदिक शक्तिवर्धक च्यवनप्राश तथा कल्प के बारे में भी बताते हैं और हठयौगिक क्रियाओं के बारे में भी। ये सभी उपाय आज और आने वाली सदियों तक भी उतने ही उपयोगी होंगे जितने ये तब थे जब इन्हें खोजा गया था।

इसमें प्रमाणस्वरूप उन सभी के बारे में भी बताया गया है, जिन्होंने इस कलियुग में भी सौ और उससे अधिक वर्ष तक पूर्ण सक्रिय और स्वस्थ रहते हुए जीवन व्यतीत किया।

गुरुदेव कहते थे- ”हमारा यह शरीर ईश्वर का चलता-फिरता मन्दिर है; अतः इसे स्वच्छ और स्वस्थ रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है।” इसमें उन्होंने हमारे विचारों और मन को शुद्ध रखने और चरित्र अच्छा रखने हेतु भी बल दिया है जो शरीर को स्वस्थ रखने हेतु अनिवार्य है।

अतः आप सभी से निवेदन है कि इस मूल्यवान् पुस्तक को पढ़ें और परम पूज्य गुरुदेव के बताये हुए उपायों को अपना कर स्वस्थ और सुखी जीवन बितायें।

सदा गुरुदेव की सेवा में

शिवानन्द राधिका अशोक

प्रस्तावना

वृद्धावस्था-विज्ञान एक अत्यन्त प्राचीन विज्ञान है। मनुष्य ने अत्यन्त प्राचीन काल से मृत्यु पर विजय पाने हेतु मार्ग और साधनों की खोज की; क्योंकि वह अमर होना चाहता है। उसके अन्तर में अमरत्व को व्यक्त करने तथा उस अमरत्व को अभी और यहीं अनुभव करने की सहज अभिलाषा है।

ईशावास्योपनिषद् मनुष्य को निर्देश देती है कि उसका यही धर्म है कि वह न्यायोचित कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने का प्रयास करे।

प्राचीन काल में ऋषियों ने अपनी अरण्य अनुसन्धान प्रयोगशालाओं में जीवन-काल में वृद्धि के लिए प्राणायाम, आसन-शीर्षासन और सर्वांगासन, प्रार्थना, हवन, कुछ जड़ी-बूटियों और काया कल्प जैसी विधियों का आविष्कार किया। उन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि जो जीव धीरे-धीरे श्वास लेते हैं या जिनकी श्वसन-दर प्रति मिनट कम होती है, वे अधिक लम्बा जीवन जीते हैं और श्वास को थोड़ी देर रोकना (कुम्भक) अथवा निष्क्रिय बनाने से भी आयु में वृद्धि होती है। इसीलिए उन्होंने दीर्घायु हेतु प्राणायाम निर्दिष्ट किया।

किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दीर्घ जीवन स्वयमेव प्राप्त होने वाला वरदान नहीं है। स्वास्थ्य, शक्ति और जीवनी शक्ति भी स्वयं प्राप्त नहीं होते; बल्कि ये उनका किस प्रकार प्रयोग किया जाता है, उस पर निर्भर करते हैं। जीवन का अर्थ वृद्धावस्था के कष्टों, आंशिक क्षय या एक जीवित मृत्यु की अवधि में वृद्धि करना न हो कर जीवन को इस भाँति जीना है कि हम अपने सौवें जन्म-दिवस तक पूर्ण ओजस्वी बने रहें। ऐसा दिव्य जीवन जियें जो मानवता के प्रति निष्काम सेवा में रत हो। वह ऐसा हो कि आपके

सौवें जन्म-दिवस पर लोग अपने सम्पूर्ण हृदय से आपके अगले सौ वर्षीय जीवन हेतु ईश्वर से प्रार्थना करें।

आध्यात्मिक निष्ठा, परोपकार हेतु समर्पण जीवन-काल में वृद्धि हेतु महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इस हेतु अन्य कारक हैं-सभी जीवन-अंगों का (बिना किसी एक अंग के अधिक कमजोर हुए) समान रूप से क्षीण होना, असाध्य रोगों का न होना, अपने आस-पास के लोगों विशेष रूप से युवा पीढ़ी के प्रति प्रेम, कुछ कल्याणकारी कार्यों में अत्यधिक रुचि, जीने की इच्छा तथा किसी एक लक्ष्य हेतु जीना।

इसी के साथ-साथ आयु में वृद्धि के साथ-साथ शरीर में जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें सहजता से स्वीकारना चाहिए। डा. क्राम्पटन जो एक जाने-माने वृद्धावस्था-विशेषज्ञ थे, कहते "यदि कोई मनुष्य इस बात को भली-भाँति समझ लेता है कि बहुत-सी बातों में वह वैसा नहीं है, जैसा वह दस वर्ष पूर्व था और ऐसा ही समझ कर काम करता है, तो वह अपने जीवन के खेल में सदा आगे रहता है। आप भी अपनी सीमाओं को जानें, उन्हें स्वीकार करें तथा अपने पास उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग करें।" यही आपके लिए सर्वश्रेष्ठ सलाह होगी।

प्रसन्न रहें ! शिशु की तरह बनें। अपनी ज्ञान-प्राप्ति की तथा काम करने की लालसा में सदा युवा रहें। सदा ईश्वर का आश्रय लें और यह जानें कि यह आत्मा अजन्मा, अजर, अमर है। इसके साथ ही नित्य ध्यान करें और यह जानें कि आप अमर आत्मा हैं। आपको इससे स्वास्थ्य और दीर्घायु का वरदान प्राप्त होगा।

आप सभी शतायु और मानव मात्र के उपकारी बनें ! ईश्वर आप सभी पर कृपालु हो !

-स्वामी शिवानन्द

भूमिका

सौ वर्ष कैसे जियें ?

उत्तर है-"सादा जीवन, उच्च विचार।"

प्रश्न और उत्तर दोनों में मात्र चार शब्द हैं, किन्तु अभ्यास में ये बड़े ही कठिन हैं। सादी और सरल बातें प्रारम्भ में अभ्यास में बड़ी ही कठिन लगती हैं। मानव की प्रकृति सदैव उच्च जीवन और निम्न विचार की ओर होती है। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है।" यदि विचार अच्छे हैं, तो शरीर भी स्वस्थ होगा। बुरे विचार स्वयं अपने ऊपर और अन्य के शरीर पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं। वे विचार करने वाले तथा जिसके बारे में विचार किया जा रहा है, दोनों को हानि पहुँचाते हैं। इसलिए हमें बुरे विचारों से स्वयं बचना चाहिए और उचित विचारों का पोषण करना चाहिए।

सादा जीवन : सादा जीवन का अर्थ है-प्राकृतिक जीवन अर्थात् प्रकृति के नियमों के अनुसार जीना । हमारा शरीर पाँच प्राकृतिक तत्त्वों से निर्मित है-पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु। इन तत्त्वों के पूर्ण उपयोग से शरीर स्वस्थ रहता है।

पृथ्वी : हम इस पृथ्वी पर रहते हैं। भूमि से चुम्बकीय ऊर्जा निकलती रहती है; इसलिए जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो, नंगे पाँव भूमि पर चलना चाहिए ताकि हम पृथ्वी के सम्पर्क में रह सकें। पृथ्वी में मारक विषों को खींचने का गुण होता है, यह यहाँ तक कि सर्प-दंश के विष को भी खींच लेती है। पुरातन काल में जब साबुन नहीं था, लोग दाँतों, बालों और शरीर को साफ करने के लिए नरम मिट्टी का प्रयोग करते थे। स्नान करने के पश्चात् वे अपने शरीर पर भस्म लगाते थे तथा वे वर्तमान पीढ़ी की तुलना में अधिक

स्वस्थ और दीर्घायु रहते थे। प्राकृतिक जीवन सस्ता भी होता है। हमें मिट्टी को प्राप्त करने के लिए धन की नहीं, मात्र थोड़े प्रयास की आवश्यकता है।

जल : शरीर को स्वस्थ रखने में जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सबसे पहले प्रातः उठते ही जल की आवश्यकता मुँह धोने के लिए होती है। उसके बाद हमें अपने आन्तरिक अंगों की स्वच्छता हेतु पीने के लिए जल चाहिए। फिर प्रातःकाल स्नान हेतु जल चाहिए जिससे हमें शक्ति और अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। हमें भोजन के एक घण्टे पहले और दो घण्टे बाद जल पीना चाहिए। भोजन के साथ जल न लें। अच्छे स्वास्थ्य हेतु प्रति सप्ताह तथा जब भी आवश्यकता हो, पानी का एनीमा लें। कुछ रोगों के उपचार में पट्टियों का प्रयोग होता है और इन पट्टियों के लिए गरम या ठण्ढा पानी प्रयोग में आता है। यदि दर्द सहने योग्य हो, तो गरम पट्टी का प्रयोग करें और यदि दर्द असह्य हो, तो ठण्ढी पट्टी का प्रयोग करें।

वर्षा ऋतु में पानी मटमैला हो जाता है, तब इसे छान लें और तीन गैलन पानी में एक पूरा नीबू डाल दें, फिर एक घण्टे बाद इसे प्रयोग में लें। यदि हमें तत्काल जल की आवश्यकता हो, तो दो गैलन पानी में नीबू के रस की दो बूँद डालनी चाहिए।

वायु : शरीर जिन तत्त्वों से निर्मित है, उनमें से प्रमुख वायु है। प्रातःकालीन वायु में अन्य समय से डेढ़ गुना अधिक प्राणवायु रहती है। इसीलिए प्रातःकालीन भ्रमण अथवा दौड़ना अत्यन्त आवश्यक है। यदि दौड़ना सम्भव न हो, तो तेजी से भ्रमण श्रेष्ठ है। जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो, हमें खुले में अपना समय व्यतीत करना चाहिए। वे लोग जो खुले वातावरण में काम करते हैं, बन्द कमरों में रहने वाले लोगों की तुलना में अधिक स्वस्थ रहते हैं। खुली वायु में किये जाने वाले व्यायाम, घर में किये जाने वाले शारीरिक व्यायामों से अधिक लाभप्रद होते हैं। पुरानी पीढ़ी के लोगों का जीवन अधिक लम्बा था; क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र अधिकतर खुली हवा में रहता था, क्योंकि तब मिलें और फैक्ट्रियाँ नहीं थीं।

सूर्य : प्रातःकाल सूर्य के प्रकाश में १० से २० मिनट का सूर्य-स्नान हमें बहुत अधिक ऊर्जा प्रदान करता है और हमारे शरीर को शुद्ध करता है। बाहर खुले में काम करना अधिक अच्छा है; पर आजकल अधिकतर काम मिलों, कारखानों और कार्यालयों में होता है, क्योंकि यह मशीनी युग है, इसलिए ऐसा करना सभी के लिए सम्भव नहीं है। प्राचीन काल में विद्यालय खुले में लगते थे। अधिकांश लोग खपरैल वाले घरों में अथवा झोपड़ियों में रहते थे। इस प्रकार उस समय जीवन अधिक प्राकृतिक था। वर्तमान में सब-कुछ अप्राकृतिक हो गया है। आजकल घर की समस्या बहुत अधिक बढ़ गयी है। अधिकांश लोग मकानों के संकुल (फ्लैट) में रहने हेतु बाध्य हैं जहाँ न तो शुद्ध वायु का आवागमन होता है न ही वहाँ सूर्य का प्रकाश आता है। सूर्य नमस्कार भी खुले में करने से बहुत लाभ होता है।

व्यायाम : व्यायाम दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक भोजन है। सूर्य-नमस्कार सर्वाधिक उपयोगी व्यायाम है। यह आसनों और प्राणायाम के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह शारीरिक और आध्यात्मिक लाभ प्रदान करता है। पुरानी पीढ़ी के लोग इसे करते थे। इसे स्त्री और पुरुष-दोनों ही कर सकते हैं। घर के बाहर मैदान में खेले जाने वाले खेल भी अच्छे हैं। भारतीय खेलों के लिए बहुत अधिक साधनों की आवश्यकता नहीं होती, जब कि यूरोपीय खेल अधिक खर्चीले हैं। बच्चों और लड़कों के लिए दौड़ना बहुत अच्छा व्यायाम है। वृद्ध लोगों के लिए प्रातः और सायंकालीन भ्रमण बहुत अच्छा व्यायाम है। किसी भी प्रकार का नियमित व्यायाम करना आवश्यक है।

भोजन : अच्छे स्वास्थ्य के लिए भोजन का बड़ा महत्त्व है। फल और मूल श्रेष्ठ आहार हैं। ऋषि गण जो बहुत लम्बा जीवन जीते थे, वे फल और मूल ही ग्रहण करते थे। सूर्य के प्रकाश में प्राकृतिक रूप से पके फल स्वास्थ्य हेतु श्रेष्ठ तथा सात्त्विक भी होते हैं। वर्तमान समय में जब अनाज ही मँहगा है, तो फल तो और अधिक मँहगे हैं, इसलिए वे सभी के लिए सुलभ नहीं हैं। मिलों के अनाजों की तुलना में अंकुरित अनाजों में अधिक विटामिन होते हैं। सब्जियाँ न मिलने के समय अंकुरित अनाज उनके उद्देश्य को पूर्ण कर सकते हैं।

कुकर में भोजन को पकाने पर उस भोजन में सीधी आँच पर पकाये गये भोजन की तुलना में अधिक मात्रा में विटामिन रहते हैं। निर्धन लोग सस्ती सब्जियों और फलों का लाभ ले सकते हैं। अत्यन्त उष्ण अथवा ठण्डे पेय पदार्थ ग्रहण करना उचित नहीं है।

दूध और उससे निर्मित पदार्थ : गाय का दूध शिशु से ले कर वृद्ध तक-सभी के लिए उपयोगी है। यह पूर्ण आहार है। वर्तमान समय में यह मँहगा होने के कारण सभी को सुलभ नहीं है और सभी इसका प्रयोग नहीं कर सकते। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में दूध सस्ता भी था और निर्धन तथा धनवान् सभी को सरलता से उपलब्ध भी था। आजकल मात्र धनवान् ही दूध, दही, घी आदि का प्रयोग कर सकते हैं। निर्धन और मध्यमवर्गीय जनों के भोजन में से घी आजकल अदृश्य हो गया है और उसका स्थान वनस्पति घी ने ले लिया है।

मध्यमवर्गीय लोग छाछ का प्रयोग कर सकते हैं। यह भी दूध के समान ही गुणकारी है। गाय का दूध औषधि और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है। ताजा निकाला हुआ दूध सबसे अच्छा होता है; किन्तु यह सभी को प्राप्त नहीं है, इसलिए दूध को एक बार उबाल कर प्रयोग करना चाहिए।

सब्जी और फल : अच्छे स्वास्थ्य हेतु सब्जी और फल भी आवश्यक हैं। वास्तव में हमारे भोजन में एक चौथाई भाग अनाज और तीन चौथाई भाग फल और सब्जियाँ होने चाहिए। आजकल सब्जियाँ भी बहुत मँहगी हैं, उनके स्थान पर सस्ती पत्तेदार सब्जियाँ प्रयोग की जा सकती हैं।

सब्जियों का सलाद भी अच्छा होता है। यदि सब्जियाँ सलाद की तरह न लें, तो उनको बर्तन का ढक्कन बन्द करके या कुकर में उबाल कर प्रयोग करें।

सब्जियों में पालक, चुकन्दर आदि अच्छे हैं। फल में केला, नीबू आदि अच्छे हैं। फल व सब्जियों में गाजर, मूली, टमाटर सभी को सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।

शुष्क फलों में खजूर, मुनक्का, किशमिश भी अच्छे हैं और सस्ते भी; इसलिए इनका प्रयोग करना चाहिए और लाभ उठाना चाहिए।

अच्छी आदतें : स्वास्थ्य को बनाये रखने में अच्छी आदतों का भी बहुत योगदान होता है। "जल्दी सोना और जल्दी जागना मनुष्य को स्वस्थ, समृद्ध और बुद्धिमान् बनाता है।" रातपाली में काम करने वालों के लिए रात में १० बजे सोना और प्रातः ४ बजे जागना सम्भव नहीं है; लेकिन जो रात में काम पर नहीं जाते, वे भी देर रात तक जागते और सुबह देर से सो कर उठते हैं, जब कि रात को जल्दी सो जाना और सुबह ४ बजे उठना एक अच्छी आदत है। स्वस्थ और दीर्घायु रहने के लिए इसे अपनाना चाहिए। जो बन्द घरों में रहते हैं, उनके लिए प्रातःकालीन भ्रमण पर जाना अनिवार्य है। जहाँ तक हो सके, भोजन ग्रहण करने का एक निश्चित समय होना चाहिए। प्रत्येक ग्रास को भली-भाँति चबायें और उसे जल्दी-जल्दी न निगलें। चाय-काफी पीने से बचें। अपने देश में पहाड़ी लोगों के सिवा अन्य के लिए चाय, काफी, कोको आवश्यक नहीं है।

सद्व्यवहार : भोजन की तरह हमारा व्यवहार भी अच्छा होना चाहिए। हमें एक-दूसरे का हितैषी होना चाहिए और सदा दूसरों की सहायता हेतु तत्पर रहना चाहिए; क्योंकि हम सब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियन्ता परम पिता परमेश्वर की सन्तान हैं।

"मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है" इसलिए हमें अपने विचार हमेशा अच्छे रखने चाहिए। बुरे विचार दूसरों को ही हानि नहीं पहुँचाते, वरन् स्वयं के लिए भी हानिकर होते हैं। इसलिए हमें दूसरों को कष्ट पहुँचाने का विचार नहीं करना चाहिए। हमें अपशब्द अथवा कठोर वचन बोल कर अथवा दूसरों की आलोचना करके उनका हृदय नहीं दुखाना चाहिए।

"जो गलती करता है, वही तो मानव है।" इस जगत् में कोई भी पूर्ण नहीं है; इसलिए यदि हमारे साथ कोई गलत व्यवहार भी करता है, तो उसे क्षमा कर देना चाहिए यह सोच कर कि वह व्यक्ति अज्ञानवश ऐसा कर बैठा है। यदि हम किसी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, किसी की वस्तु का हरण करते हैं, तो हमारा मन स्वाभाविक रूप से अशान्त हो जाता है और यह हमारे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। हमारा अन्तःकरण हमें सचेत करता है। अतः हमें इन सब बातों के प्रति सावधान रहना चाहिए।

क्रोध की भावना भी बहुत हानिकारक है। इसलिए हमें मन को प्रतिकूल परिस्थितियों में नियन्त्रित रखने का प्रयास करना चाहिए। इसी तरह विपरीत घटनाओं के समय जो भय उत्पन्न होता है, वह भी हमारे लिए हानिकारक है। व्याकुलता तथा चिन्ता शरीर और मन दोनों को हानि पहुँचाती है, नष्ट करती है। वैसे तो हमें पहले से ही सावधानी बरतनी चाहिए; किन्तु फिर भी यथासम्भव चिन्ताओं को अपने मन में स्थान नहीं देना चाहिए।

आलस्य भी स्वास्थ्य के लिए बहुत बुरा है। "खाली मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला है।" इसलिए सदा स्वयं को किसी काम में लगाये रखें। पर्याप्त मात्रा में विश्राम भी आवश्यक है। विश्राम का अर्थ है-कार्य में परिवर्तन। विश्राम के लिए हमें हलके और मनोरंजक कार्य या कोई रुचिकर कार्य या ऐसी अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय जिनसे हम कुछ ज्ञान अर्जन कर सकें-इन उपायों को अपनाना चाहिए। पुस्तकालय सभी का महाविद्यालय है। हम अच्छी पुस्तकों के अध्ययन से बहुत उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बागवानी, सायंकालीन भ्रमण या मित्रों के साथ अच्छी चर्चाएँ सिनेमा देखने या ताश खेलने से अधिक श्रेष्ठ मनोरंजन है।

ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य हमें स्वस्थ रखने और दीर्घ जीवन प्रदान करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पुरातन काल में ब्रह्मचर्य पर बहुत अधिक बल दिया जाता था; किन्तु आजकल इसकी उपेक्षा हो रही है। सभी महान् पुरुषों ने ब्रह्मचर्य का पालन किया। वे अपने वचन और कार्यों में पवित्र थे। वह पुरुष जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहता हो, उसे प्रारम्भ में २५ वर्षों तक ब्रह्मचारी रह कर फिर विवाह करना चाहिए तथा विवाह के बाद भी आत्म-संयम आवश्यक है। आजकल बड़ी संख्या में छपने वाला अश्लील साहित्य और सिनेमा ब्रह्मचर्य-पालन में महान् बाधक हैं। पुराना समय स्वर्णिम काल था, आजकल तो सब दिखावा मात्र रह गया है।

प्रार्थना : ईश्वर जीवन में प्रतिक्षण हमारी रक्षा करते हैं। हमें प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। यदि हमें जीविकोपार्जन के कामों, गृहस्थी के कामों तथा सामाजिक कर्तव्यों के भारी बोझ के कारण दिन में ईश्वर को याद करने का समय न मिल पाये, तो भी हमें कम-से-कम प्रातःकाल शय्या-त्याग

करते ही और रात्रि में सोने जाते समय ईश्वर से उनकी कृपा की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। मनुष्य जिन चीजों को प्राप्त करने के स्वप्न देखता है, उनसे कई गुना अधिक वह मात्र प्रार्थना से प्राप्त कर सकता है। इसलिए भोजन से भी अधिक प्रार्थना आवश्यक है। किसी भी परिस्थिति में, चाहे वह अच्छी हो या बुरी, भगवान् को कभी न भूलें। प्रतिकूल परिस्थितियाँ हमारी उन भूलों का परिणाम हैं जो हमने इस जन्म या पूर्व-जन्म में की हैं। हम स्वयं ही उनके प्रति उत्तरदायी हैं, न कि भगवान्। संक्षेप में 'सादा जीवन उच्च विचार' यह दीर्घ जीवन की कुंजी है।

दीर्घ जीवन हेतु ऋग्वेद की प्रार्थना

ॐ सविता पश्चात्सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्
सविता नः सवतु सर्वतातिं
सविता नो रासतां दीर्घमायुः।
(ऋग्वेद : २०-२६-२४)

ऊपर भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही नीचे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म सामने है। ब्रह्म हमें अच्छा स्वास्थ्य और सुख प्रदान करे। ब्रह्म हमें दीर्घायु प्रदान करे (ऋग्वेद : १०-३६-१४)।

शतवर्षीय जीवन पर ईशावास्योपनिषद्

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

इस जगत् में अपने कर्तव्यों का सम्पादन करते हुए प्रत्येक को सौ वर्ष जीने की इच्छा रखनी चाहिए। अतः यही उसका धर्म है और इसके सिवा और कुछ नहीं। ऐसा मनुष्य कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता है।

यह ईशावास्योपनिषद् का द्वितीय मन्त्र है। इसमें कर्म के सिद्धान्त को सही बताया है। यह उस शक्ति की ओर संकेत करता है जो इस जगत् में कर्मों पर शासन करती है। जब कोई मनुष्य इस दैवी, निष्काम्य और निःस्वार्थ भाव से कर्म करता है, तो वह कर्म-फलों के बन्धन से मुक्त रहता है। ऐसे मोक्ष प्रदायक कर्म करते हुए मनुष्य को सौ वर्षों तक जीवित रहना चाहिए। प्रथम पंक्ति का द्वितीय अंश इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि मनुष्य के जीवन की सामान्य अवधि सौ वर्ष है। प्रत्येक को पूर्ण सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहिए।

'जिजीविषेत्' का अर्थ है-जीने की इच्छा रखनी चाहिए तथा 'शतं समाः' का अर्थ है-सौ वर्ष। अच्छे कर्म करते हुए तथा परोपकारी बने रह कर ही प्रत्येक को सौ वर्ष जीने की आकांक्षा रखनी चाहिए, अन्यथा नहीं।

उपनिषद् का यह वाक्य एक ओजस्वी सौ वर्षीय जीवन हेतु पुकार है। जीवन निरर्थक और सुखसाध्य नहीं होना चाहिए। मनुष्य को सौ वर्ष निष्क्रिय रह कर नहीं, वरन् क्रियाशील रह कर व्यतीत करने चाहिए और सिद्धि या मोक्ष हेतु जीना चाहिए।

मनुष्य को सामान्य रूप से सौ वर्ष जीना चाहिए। व्यक्ति को धार्मिक कृत्य (सन्ध्या-वन्दन आदि) नित्य सम्पादित करने चाहिए। मनुष्य को मानव मात्र की सेवा निष्काम्य और निःस्वार्थ भाव से, आत्म भाव से करनी चाहिए। मात्र तभी चित्तशुद्धि प्राप्त होगी और आत्मज्ञान प्राप्त होगा।

दीर्घ जीवन हेतु महामृत्युंजय मन्त्र

।। महामृत्युंजय मन्त्र ।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽऽमृतात् ।।

अर्थ

हम त्रिनेत्रधारी (भगवान् शिव) की आराधना करते हैं, जो सुगन्धित हैं और जो सभी प्राणियों का पालन-पोषण करते हैं। भगवान् शिव हमें अमरत्व-प्राप्ति हेतु उसी प्रकार मृत्यु से मुक्त करें, जिस प्रकार कुम्हड़ा अपने बन्धन (लता) से अलग कर दिया जाता है।

लाभ

१. **महामृत्युंजय मन्त्र जीवन दायक मन्त्र है। वर्तमान समय में जब कि जीवन बहुत जटिल है, दुर्घटनाएँ दिन-प्रति-दिन होती रहती हैं। यह मन्त्र सर्प-दंश, बिजली गिरने, मोटर दुर्घटना, वायुयान दुर्घटना, सायकिल दुर्घटना, जल दुर्घटना, अग्नि दुर्घटना और अन्य सभी दुर्घटनाओं में मृत्यु से हमारी रक्षा करता है। इसके साथ ही इसमें महान् आरोग्यकर प्रभाव भी है। जो रोग चिकित्सकों द्वारा असाध्य घोषित कर दिये गये हों, वे इस मन्त्र के सावधानीपूर्वक तथा निष्ठापूर्वक और पूर्ण विश्वासपूर्वक जप करने से ठीक हो जाते हैं। यह समस्त रोगों के विरुद्ध एक अस्त्र है। यह मन्त्र मृत्यु से रक्षा करता है।**

२. **यह मोक्ष मन्त्र भी है। यह भगवान् शिव का मन्त्र है। यह दीर्घायुष्य, शान्ति, ऐश्वर्य, पुष्टि, तुष्टि और मोक्ष प्रदान करता है।**

३. **अपने जन्म-दिन पर एक लाख या कम-से-कम पचास हजार महामृत्युंजय मन्त्र का जप अवश्य करें। हवन करें। साधुओं, निर्धनों और रोगियों को भोजन करायें।**

दीर्घायु हेतु सूर्य मन्त्र

ॐ सूर्य सुन्दरलोकनाथममृतं वेदान्तसारं शिवं ।
ज्ञानं ब्रह्ममयं सुरेशममलं लोकैकचित्तं स्वयम्।।
इन्द्रादित्यनराधिपं सुरगुरुं त्रैलोक्यचूडामणिं ।
ब्रह्माविष्णुशिवस्वरूपहृदयं वन्दे सदा भास्करम्।।

मैं सदा सूर्य भगवान् की वन्दना करता हूँ जो जगत् के सुन्दर स्वामी हैं, जो नित्य, वेदान्त के सार, पवित्र तथा पूर्ण ब्रह्मज्ञान हैं। वे देवों के देव हैं, सदा शुद्ध हैं, जो जगत् के एकमात्र चैतन्य हैं। जो इन्द्र के स्वामी, देवों के गुरु हैं। देवताओं और मनुष्यों के स्वामी हैं, तीनों लोकों के चूड़ामणि है। जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के हृदय का स्वरूप हैं और प्रकाश को देने वाले हैं।

सौ वर्षीय जीवन हेतु प्रातःकालीन औषधि

नीबू का रस, अदरक का रस और शहद-तीनों को समान मात्रा में मिला लें। ये तीनों मिल कर तीन औंस होने चाहिए। यह प्रातः खाली पेट लें। इसके अत्यधिक लाभ हैं। इससे जीवन-काल में वृद्धि होती है। जो सौ वर्ष जीना चाहते हों, उनके लिए यह आवश्यक औषधि है।

सौ वर्षीय जीवन हेतु सूर्य-नमस्कार

इस व्यायाम को सूर्य नमस्कार कहते हैं; क्योंकि इसका अभ्यास प्रातःकाल सूर्य की ओर मुख करके किया जाता है। सूर्य को स्वास्थ्य और दीर्घायु का देवता माना गया है। इसलिए प्राचीन काल में आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ सूर्य नमस्कार का भी अभ्यास किया जाता था। इसका अभ्यास करते समय सूर्य के बारह नामों का उच्चारण भी करना चाहिए। इसके कम-से-कम बारह चक्र नित्य करने चाहिए। यह योगासन और प्राणायाम का संयुक्त व्यायाम है। यह पेट की चर्बी को कम करता है। रीढ़ की हड्डी और पैरों में लचीलापन लाता है और श्वास लेने की क्षमता में वृद्धि करता है। सूर्य-नमस्कार करने के बाद आसनों के अभ्यास में सरलता होती है।

क्रियाविधि और श्वास की स्थिति

आसन करते समय नीचे कम्बल या दरी बिछा लें।

स्थिति १ : सूर्य की ओर मुख कर लें। हाथों को नमस्कार की मुद्रा में रखें। पैरों को पास-पास रखें और सीधे खड़े हो जायें। मन्त्र-ॐ मित्राय नमः।

स्थिति २ : श्वास भीतर लें। दोनों हाथों को ऊपर उठा लें और पीछे झुकें। मन्त्र-ॐ रवये नमः।

स्थिति ३ : श्वास बाहर निकानों और आगे झुक कर दोनों हाथों को पैरों के आस-पास भूमि पर रखें। सिर

को झुका कर घुटनों से स्पर्श करायें। प्रारम्भ में घुटने थोड़े मुड़ जायेंगे; किन्तु बाद में वे सीधे रहेंगे और सिर घुटनों को स्पर्श करेगा। मन्त्र-ॐ सूर्याय नमः।

स्थिति ४: श्वास को भीतर लें और दाहिने पैर को पीछे की ओर शरीर से दूर ले कर जायें। हाथों और बायें

पैर को भूमि पर दृढ़तापूर्वक रखे रहें। सिर ऊपर की ओर रखें। ऊपर देखें। बायाँ घुटना दोनों हाथों के मध्य में होना चाहिए। मन्त्र-ॐ भानवे नमः ।

स्थिति ५ : श्वास भीतर ही रोके रखें। अब बायें पैर को शरीर से दूर ले जायें और दायें पैर के साथ रखें। दोनों घुटने भूमि से ऊपर उठा लें। अब अपना भार हाथों पर रखें और सारे शरीर को दण्ड की भाँति सीधा रखें। मन्त्र-ॐ खगाय नमः।

स्थिति ६ : श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते हुए शरीर को जमीन पर ले कर आयें। इस स्थिति में सारा शरीर भूमि को स्पर्श नहीं करता। इसे साष्टांग नमस्कार कहते हैं। इसमें मात्र आठ अंग-दोनों पंजे, दोनों घुटने, दोनों हथेलियाँ, ठोड़ी और छाती ही भूमि के सम्पर्क में आते हैं। पेट भूमि से ऊपर रहता है। मन्त्र-ॐ पूष्णे नमः ।

स्थिति ७ : श्वास अन्दर लें। रीढ़ को पूरा मोड़ते हुए पीछे की ओर झुकें। दृष्टि ऊपर की ओर रखें (भुजंगासन)। मन्त्र- ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ।

स्थिति ८ : श्वास बाहर निकालें। शरीर को ऊपर उठायें। एड़ियों को भूमि से स्पर्श करायें (पर्वतासन)। मन्त्र - ॐ मरीचये नमः।

स्थिति ९ : यह पूर्व में बतायी गयी चौथी स्थिति के समान है। बस, इसमें बायें के स्थान पर दायाँ पैर दोनों हाथों के मध्य आयेगा और बायाँ पैर पीछे, घुटना जमीन को स्पर्श करेगा। अब ऊपर देखें। रीढ़ को थोड़ा मोड़ें और श्वास लें। मन्त्र-ॐ आदित्याय नमः।

स्थिति १० : स्थिति तीन की भाँति बायें पैर को आगे ला कर दायें पैर के साथ रखें। घुटने सीधे रखें और सिर को घुटने से स्पर्श करायें। मन्त्र-ॐ सवित्रे नमः।

स्थिति ११ : श्वास लें। दोनों हाथों को सिर के दोनों तरफ सीधे रखें। पीछे झुकें (स्थिति २ की तरह)। मन्त्र-ॐ अर्काय नमः।

स्थिति १२ : श्वास बाहर निकालें और हाथों को नमस्कार की मुद्रा में ले कर आयें। अब विश्राम करें। मन्त्र-ॐ भास्कराय नमः।

उपर्युक्त बारह स्थितियों से सूर्य नमस्कार का एक चक्र पूरा होता है। सूर्य-नमस्कार के नित्य बारह चक्र करने चाहिए।

च्यवन ऋषि, अश्विनीकुमार और चिर-यौवन

जो आयुर्वेद के प्रति समर्पित हैं तथा इस महान् विज्ञान के अनुयायी हैं, वे महर्षि च्यवन को अत्यन्त आदर और सम्मानपूर्वक देखते हैं। च्यवन ऋषि ने मानव मात्र के कल्याण के लिए च्यवनप्राश का आविष्कार किया जो अपूर्व तथा अद्वितीय शक्तिवर्धक है। यह औषधि मानव-जाति के लिए च्यवन ऋषि का एक श्रेष्ठ उपहार है।

प्राचीन काल में ऋषि च्यवन ने बहुत काल तक कठोर तपस्या की, जिससे उनका शरीर बहुत कमजोर हो गया; लेकिन उनकी साधना करने की इच्छा अभी भी शेष थी। इसलिए उन्होंने किसी ऐसी वस्तु को खोजने के बारे में विचार किया, जिससे उनका स्वास्थ्य पूर्ववत् हो जाये। ऐसा सोच कर उन्होंने अश्विनीकुमारों का आवाहन और स्तुति की।

महर्षि की स्तुति से प्रसन्न हो कर अश्विनीकुमार उनके समक्ष प्रकट हुए और उनसे बुलाने का कारण पूछा। ऋषि ने उनका आतिथ्य किया और

बोले- "हे देवताओं के दिव्य वैद्यो! मैंने अत्यधिक तपस्या की। इससे मुझे बहुत-सी दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हुई; लेकिन मेरा शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। कृपा करके मुझे ऐसी औषधि बतलायें, जिससे मैं पुनः अपनी पूर्व-शक्ति को प्राप्त कर सकूँ और अपने जीवन की लक्ष्य-प्राप्ति के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए दीर्घायु प्राप्त कर सकूँ।"

यह सुन कर अश्विनीकुमारों ने गहन विचार-विमर्श के बाद कहा- "हे महर्षि च्यवन! हम आपको अपूर्व शक्ति प्रदान करने वाली एक औषधि बनाने की विधि बतलाते हैं। इस औषधि से आपके साथ-साथ सम्पूर्ण मानव-जाति लाभान्वित होगी। यह संसार में आपके नाम से प्रसिद्ध होगी। इस औषधि को ग्रहण करने से आपका शरीर तीस दिनों में पुनः नवीन शक्ति से सम्पन्न हो जायेगा। आप नये ओज और जीवनी शक्ति से सम्पन्न हो जायेंगे। आप वृद्धावस्था से मुक्त हो जायेंगे।" और फिर अश्विनीकुमार अन्तर्धान हो गये।

इस रसायन को तैयार करने का समय शीत ऋतु और वसन्त ऋतु है। इन ऋतुओं में औषधियाँ ताजी मिलती हैं। इसलिए वे अधिक लाभकारी होती हैं। च्यवनप्राश का मुख्य घटक हरा आँवला है। आँवला तीनों दोषों-कफ, वात और पित्त को सन्तुलित रखता है। इसके अन्य घटक शुद्ध शक्कर, शुद्ध शहद, घी, वंशक्षीरी, पिप्पली, इलायची, नागकेशर, दारुसिता, किशमिश, अष्टवर्ग, दशमूल, चन्दन आदि हैं। यह औषधि आश्चर्यजनक रोगप्रतिरोधक तथा शक्तिवर्धक है। यह बहुत से रोगों का उन्मूलन करता है। इससे व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह अस्थमा, श्वास में कष्ट, श्वसनशोथ और क्षयरोग में बहुत उपयोगी है। यह अशक्तता को दूर करता है और शरीर का आश्चर्यजनक रूप से निर्माण करता है।

चरकसंहिता में लिखा है-"अस्य प्रयोगात् च्यवनः सुवृद्धोभूत् पुनर्युवा।"

इसका प्रयोग करके च्यवन ऋषि ने जो वृद्ध हो गये थे, एक बार पुनः अपने यौवन को प्राप्त किया (चरकसंहिता : १-७२)।

इस आश्चर्यजनक औषधि के प्रयोग से च्यवन ऋषि कभी बूढ़े नहीं हुए।

इस आश्चर्यजनक औषधि का ज्ञान मानव मात्र को प्रदान करके च्यवन ऋषि ने मानव-जाति की महान् सेवा की है। इस शक्तिवर्धक औषधि का विस्तृत विवरण चरकसंहिता में मिलता है।

विषयानुक्रमणिका

१.दीर्घ जीवन के लिए आयुर्वेदिक औषधि

आयुर्वेदिक औषधियों में च्यवनप्राश एक श्रेष्ठ पुनर्योवन प्रदान करने वाली औषधि है। इसमें बहुत-सी औषधियाँ मिलायी जाती हैं, जिससे यह शीघ्र हीं आत्मसात् हो जाता है।

इसके निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण औषधि आँवला है। यह फल विटामिन सी से भरपूर रहता है। एक आँवले में दो सन्तरों के बराबर विटामिन सी होता है। यह बहुत से रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है। इसका ताजा फल मूत्रवर्धक, रेचक और शीतल होता है!

आँवला अपच दूर करने की श्रेष्ठ औषधि है। अधिक लार आना, मितली, कब्ज, महिलाओं तथा पुरुषों की अन्य दुर्बलताओं और पुरुषों में वीर्य-सम्बन्धी रोगों को आँवला दूर करता है। यह त्वचा को कान्ति और सौन्दर्य प्रदान करता है।

च्यवनप्राश के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले अन्य पदार्थ निम्न हैं-हरित धातृफलम्, शुद्ध घृत, शुद्ध शहद, शक्कर, वंशक्षीरी, अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीर काकोली, रिद्धि और बृद्धि), दशमूल, कर्कट सांघी, लाल चन्दन का चूर्ण, कोरंगी, धारुसित, सोमवली तथा सात अन्य दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ जो हिमालय में मिलती हैं।

इस अद्भुत औषधि के निर्माण की विधि का वर्णन यहाँ अनावश्यक है; क्योंकि बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ मिलायी जाती हैं और जब रोगी को तत्काल इसकी आवश्यकता हो, इसको बनाना सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में अनेक प्रतिष्ठित आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं द्वारा यह बड़े पैमाने पर बनाया जाता है। च्यवनप्राश बना-बनाया ही प्रयोग करने में सरल रहता है और यह देश के हर भाग में मिल जाता है तथा यदि कोई चाहे तो भी बिना किसी योग्य और कुशल औषधि निर्माता के प्रत्यक्ष निर्देशन में इसके निर्माण की विधि सीखे बिना इसे बनाना सम्भव नहीं है।

च्यवनप्राश सीने और पेट के बहुत से रोगों को भी दूर करता है। यह शीतऋतु में जब सरदी, खाँसी, अस्थमा तथा दुर्बल पाचन शक्ति आदि का प्रकोप रहता है, विशेष रूप से उपयोगी है। यह औषधि से अधिक शक्तिवर्धक है, इसलिए इसका प्रयोग सभी मौसमों में किया जा सकता है। यह शरीर और बुद्धिवर्धक समस्त आयुर्वेदिक औषधियों में से एक है। बच्चे, स्त्रियाँ, अशक्त या वृद्ध- सभी सुरक्षित रूप से इसका प्रयोग कर सकते हैं। बहुत से लोग च्यवनप्राश का प्रयोग शीतऋतु में करते हैं जिससे उनके जीवन-काल में भी वृद्धि होती है।

च्यवनप्राश सभी प्रकार के क्षयरोग जैसे राजयक्ष्मा में प्रभावकारी बलवर्धक है। क्षयरोग की प्रथम स्थिति में जब कम शक्ति हीनता होती है, इसका प्रयोग किया जाये, तो बहुत लाभ होता है। प्रारम्भिक स्थिति में च्यवनप्राश का प्रयोग करने से यह रोग की वृद्धि रोक कर उसे ठीक कर देता है। यह पुनः शक्ति प्राप्ति हेतु अत्यधिक उपयोगी है। यह मेधा में वृद्धि करता है और इससे स्वर भी मधुर हो जाता है। यह फेफड़ों और मूत्र-संस्थान के समस्त रोगों को दूर करता है।

इसे प्रातःकाल खाली पेट थोड़े दूध के साथ लेना चाहिए। किशोर आयु वर्ग के लिए १ चाय का चम्मच-भर सुबह लेने के बाद पाव-भर दूध पियें। यदि व्यक्ति की स्थिति बहुत कमजोर हो, तो उसे भोजन के बाद द्राक्षासव १ चाय का चम्मच भी पीना चाहिए। निर्धन वर्ग के लोग जो च्यवनप्राश नहीं ले सकते हों, उन्हें भी दुःखी नहीं होना चाहिए। उनको जब तक ताजे आँवले मिलें, उनका रस लेना चाहिए और बाकी समय आँवले का चूर्ण १ चम्मच नित्य लेना चाहिए। यह भी च्यवनप्राश के समान ही गुणकारी है। यह शक्कर या शहद के साथ लिया जा सकता है।

२.सौ वर्ष मानव की सामान्य जीवन-अवधि

“प्रत्येक मनुष्य को सौ वर्ष या उससे अधिक जीना चाहिए, यह कोई काल्पनिक उक्ति नहीं है। मनोवैज्ञानिक तथा प्राकृतिक सिद्धान्तों के अनुसार मानव के पूर्ण विकसित होने के समय से उसका सम्पूर्ण जीवन-काल पाँच गुणा होना चाहिए। यह एक प्रभावकारी सिद्धान्त है जो ब्रूट सभ्यता में उद्धृत है। घोड़ा चार वर्ष में पूर्ण विकसित होता है और बारह से चौदह वर्ष तक जीवित रहता है। ऊँट आठ वर्ष में विकसित होता है और लगभग चालीस वर्ष तक जीवित रहता है। इसी

प्रकार मानव का पूर्ण विकास बीस से पच्चीस वर्ष में होता है, इसलिए यदि कोई अनहोनी न हो तो उसे कम-से-कम सौ वर्ष जीना ही चाहिए।" यह पश्चिमी वैज्ञानिक सेवेरन का कथन है।

इस कथन की तुलना आप श्रुति, स्मृति, पुराणों तथा अन्य हिन्दू ग्रन्थों से करें और उनमें मनुष्य का पूर्ण जीवन-काल सौ वर्ष का घोषित किया है। उस समय पच्चीस वर्ष का समय तो शिक्षा और ब्रह्मचर्य का रहता था। लेकिन यह जीवन-काल ब्रह्मचर्य में दृढ़ रह कर ही प्राप्त किया जा सकता है। और इसीलिए अष्टांगयोग या राजयोग के रचयिता महर्षि पतंजलि कहते हैं- **"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।"** ब्रह्मचर्य में स्थित रह कर ही आप पूर्ण आयु प्राप्त करने योग्य हो सकते हैं। चाहे आप अन्य गुणों से रहित हैं; पर ब्रह्मचर्य में स्थित हैं, तो पूर्ण आयु की प्राप्ति आपके लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्य या आचार का अर्थ है-चरित्र-निर्माण। आपका चरित्र अवश्य ही श्रेष्ठ होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा, तो आप वीर्य का ह्रास करेंगे और आप ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित नहीं रह सकते, इस कारण आप पूर्वकालिक मृत्यु को प्राप्त होंगे।

हम देखते हैं कि ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो अधर्मी होते हैं, गलत मार्ग पर चलते हैं; लेकिन फिर भी उनके पास दीर्घायु और दिव्य शक्तियाँ होती हैं। यह उनके प्रारब्ध का फल है ; लेकिन यदि उनका चरित्र उत्तम होता और यदि वे इन्द्रिय-संयम रखते, तो वे आज से अधिक बुद्धिमान् और शक्ति-सम्पन्न होते।

३.वृद्ध क्यों होते हैं?

(मनुष्य में वृद्धावस्था की दैहिक प्रक्रिया को विलम्बित करने के लिए वैज्ञानिक शोध)

चिकित्सा विज्ञान में विकास होने से मानव में वृद्धावस्था की दैहिक प्रक्रिया पर आधारित खोज को नयी प्रेरणा मिली है। शरीर की कोशिकाएँ वृद्ध कैसे होती हैं और वे बाद के वर्षों में क्रियाशीलता और उत्पादन के अयोग्य क्यों हो जाती हैं? इस विषय पर कई अमेरिकी महाविद्यालयों में शोध किये जा रहे हैं। अमेरिकी मेडिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष डा. एडवर्ड एल. बोर्टज़ का विश्वास है कि यदि पशुओं से तुलना की जाये तो मनुष्य का जीवन-काल जो वर्तमान में ६८ वर्ष है, वह १५० वर्ष होना चाहिए।

अन्वेषक यह पता लगाना चाहते हैं कि मानव अपनी अपेक्षा के अनुरूप जीवित क्यों नहीं रहता ? क्या यह उसके भौतिक और आवेगात्मक अनुभवों का समूहीकरण है जो उसकी आयु का निर्धारण करता है? एक नव-स्थापित नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी (इन्वास्तन इलिनोइस) के मानव पोषण संस्थान में इस समस्या के समाधान हेतु आहार के दृष्टिकोण से पता लगाने का प्रयास किया जा रहा है कि मनुष्य के आहर का वृद्धावस्था में कितना योगदान है और वृद्धावस्था के विकास में उसके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थ क्या भूमिका अदा करते हैं।

उपापचय में अनियमितता

एन्टीओक कालेज (यलोस्प्रिंग्स, ओहियो) में द फेल्स रिसर्च इंस्टीट्यूट फार स्टडीज़ ऑफ ह्यूमन डेवलपमेंट में मानव-शरीर पर मनुष्य के जन्म से परिपक्कता तक के अनुभवों पर शोध किया जा रहा है। न्यूयार्क शहर की कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में अनुवांशिकता और वातावरण पर शोध की जा रही है।

इलीनोइस यूनिवर्सिटी के डा. एन्ड्र सी. इवी ने वृद्धावस्था के बारे में यह बताया कि विखण्डन परिवर्तनों का वह समूह है जिसमें विषम पदार्थ मानव-शरीर की कोशिका भित्तियों के मध्य एकत्रित हो जाता है। ऐसा शायद आन्तरिक कमजोरी अथवा कुछ बाह्य कारकों या इन दोनों के कारण कोशिकाओं में होने वाली उपापचय में अनियमितता के कारण होता है।

आहार का प्रभाव

जार्ज वाशिंगटन यूनिवर्सिटी (सेंट लुइस मिसौरी) के डा. आई. ए. लैंडिस एक कैल्शियम बाइंडिंग प्रोटीन पर शोध कर रहे हैं। यह कोशिका-वृद्धि के नियन्त्रण के लिए उपस्थित होता है और यह अति क्रियाशील या निष्क्रिय-दोनों ही हो सकता है। कोशिकाओं के वृद्ध होने की क्रिया के समय यह अति क्रियाशील हो जाता है और बहुत अधिक मात्रा में कैल्शियम बाँधता है।

न्यूयार्क शहर के डाक्टर सी. वार्ड क्राम्पटन ने देखा कि प्रतिवर्ष असाध्य रोगों के कारण अरबों लोगों की मृत्यु हो जाती है। उन्होंने सोचा ऐसी कोई रोग-प्रतिरोधक औषधि अवश्य आनी चाहिए और इसका जो नमूना उनके मस्तिष्क में था, उसका परीक्षण मिनेसोटा यूनिवर्सिटी में किया गया। १८ से ५४ वर्ष की आयु वर्ग के ५०० लोगों का दस वर्षों तक ऐच्छिक परीक्षण करके उन लक्षणों का अध्ययन किया गया जो रक्तवाहिनियों में कठोरता लाते हैं और रक्तदबाव में वृद्धि करते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एन्सेल कीज़ के साथ सात अनुसन्धानकर्ता गण मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य पर यह शोध कर रहे हैं कि आहार और शारीरिक क्रियाशीलता नष्टधर्मी रोगों से बचाव अथवा उन्हें विलम्बित कर सकते हैं या नहीं।

चिन्ता और तनाव

चिन्ता और तनाव के परिणाम पर भी विशेष ध्यान दिया गया है; क्योंकि ये बच्चों को अपराधियों में बदल देने की शक्ति रखते हैं। न्यूयार्क शहर में जितने भी उदाहरणों को खोज करने के लिए लिया गया था, सभी में डाक्टर डेविड एब्रहमसन ने पाया कि अपराधियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि में तनाव, द्वेष, परेशानी और रोष की भावना थी। ये परिस्थितियाँ केवल अपराधियों को ही पोषित नहीं करतीं, प्रत्युत् बीमारियों-जैसे हृदय रोग, चर्म रोग, श्वसन रोग अथवा पाचन क्रिया से सम्बन्धित रोगों को भी जन्म देती हैं, जिनसे विनाशकारी रोगों के होने की सम्भावना हो सकती है।

आज से तीस वर्ष बाद ६० और ७० वर्ष के बीच की आयु के लोगों में वृद्धावस्था से प्रभावित अक्षमता वालों की संख्या दुगनी हो जाने की सम्भावना है। किन्तु आधुनिक जरा-

चिकित्सा खोजों के अनुसार, ऐसे लोगों में से अधिकांश लोग अपने ज्ञान और अनुभवों के द्वारा समाज के लिए उपयोगी रहेंगे।

४. प्रचुर ऊर्जा और दीर्घ जीवन हेतु पुकार

रोग नहीं स्वास्थ्य आपकी यथार्थ सम्पत्ति है। आप उस अनामय या निरोग पुरुष, उस नित्य ब्रह्म या परमात्मा के पुत्र हैं। अपने जन्मसिद्ध अधिकार को अभी इसी क्षण माँगिए और स्वस्थ, मजबूत, शक्तिशाली और पुष्ट तथा प्रचुर ओज शक्ति सम्पन्न, उच्च स्तरीय जीवन शक्ति से सम्पन्न बनें और सौ वर्षीय जीवन की आशा के साथ जीवन बितायें।

रोग और अल्पायु, अज्ञान और प्राकृतिक नियमों के ज्ञान में कमी के कारण होती है। स्वार्थ, लालसा और अपने हठी स्वभाव के कारण आप प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते हैं। आप एक हठी बच्चे की तरह व्यवहार करते हैं। उसके बाद भी प्रकृति माँ जो कि सबसे दयालु और हितैषी है, वह आपके दुर्व्यवहार को सहन करती है और आप पर अपने अनुग्रह की वर्षा करती है तथा विभिन्न प्रकार से आपकी सहायता करती है। स्वास्थ्य के नियमों का अच्छा ज्ञान प्राप्त करें तथा उनका पालन करें। आप सौ वर्ष तक जीवित रहेंगे।

विज्ञान और जीवन में वृद्धि

आजकल विज्ञान के बहुत से परीक्षणों द्वारा इस जीवन और मृत्यु की रहस्यमय पहेली में शरीर के क्षय के कारणों में होने वाली वृद्धि रुक गयी है। मानव-जीवन मानवीय कोशिकाओं के पुनरुत्पादन द्वारा चलता है। कोशकीय द्रव जिसमें नाभिक होता है, उसके पुंज को कोशिका कहते हैं। मानव-शरीर का निर्माण कई प्रकार की कोशिकाओं के बहुत से समूहों से हुआ है। ये भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों का सम्पादन करती हैं और इनका निरन्तर पुनर्निर्माण और विखण्डन होता रहता है। एक समयावधि के पश्चात् इनकी पुनर्निर्माण की क्षमता कम हो जाती है और मनुष्य अब बूढ़ा होने लगता है। पहले ऐसा कहा जाता था कि शरीर का प्रत्येक भाग प्रत्येक सात वर्ष में पूर्णरूपेण नवीन हो जाता है; किन्तु अब यह अवधि डेढ़ वर्ष हो गयी है।

ऊतक कई प्रकार के होते हैं जैसे-पेशी ऊतक, नाड़ी ऊतक आदि। संस्थान भी कई प्रकार के हैं जैसे-पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान आदि। पाचन संस्थान में मुख, अन्न नलिका, आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत आती हैं। परिसंचरण संस्थान में हृदय, धमनी, कोशिकाएँ आती हैं। लिम्फेटिक संस्थान, लेक्टीलस, लिम्फेटिक और लिम्फेटिक ग्रन्थियाँ, पेशी संस्थान, त्वचा संस्थान इसमें त्वचा या एपीडर्मिस, क्यूटिकल या डर्मिस, स्वेद ग्रन्थियाँ जिनसे पसीना निकलता है। सेविसियस ग्रन्थि जिनसे चर्बी का स्रवण होता है। मूत्र संस्थान में गुर्दे, मूत्राशय, मूत्र नलिकाएँ आते हैं। प्रजनन संस्थान जिसमें पुरुषों में वृषण, स्त्रियों में गर्भाशय और अण्डाशय आते हैं। अन्तःस्रावी संस्थान में अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ जैसे थायराइड, पैराथायराइड, मस्तिष्क में पीयूष ग्रन्थि, पेरिनियल ग्रन्थि और एडरीनल ग्रन्थि होती है। शरीर के ऊतकों में होने वाले रचनात्मक और विखण्डनों वाले परिवर्तनों के औसत को उपापचय कहते हैं।

एक वैज्ञानिक का विश्वास है कि रक्त परिसंचरण संस्थान ही मृत्यु का रहस्य है। इसलिए वह रक्त का उपचार रासायनिक पदार्थ द्वारा करता है। एक अन्य वैज्ञानिक का विश्वास है कि जीवन का स्थान थाइराइड ग्रन्थि है। इसलिए वह वृद्ध हो गयी थाइराइड ग्रन्थि को चिम्पाजी की युवा वेरिल ग्रन्थि से बदलता है। अन्य वैज्ञानिक यह सोचते हैं कि वृद्धावस्था मानव-शरीर की कुछ मुख्य ग्रन्थियों के क्षय के कारण होती है। कई अशक्त और वृद्ध लोगों को इन ग्रन्थियों का रस देने पर वे स्वस्थ स्त्री-पुरुषों में परिवर्तित हो गये।

ऐसे आधुनिक चमत्कार नित्य प्रति होते रहते हैं। किन्तु वे रोगी मनुष्यों को अच्छे स्वास्थ्य हेतु सहायता करते हैं; लेकिन वे जीवन की सामान्य अवधि में वृद्धि नहीं करते और न ही वे स्थायी युवा बने रहने में आने वाले प्रतिरोधों का समाधान ही करते हैं। वे एक अस्सी वर्षीय वृद्ध को सौ वर्ष की आयु तक पहुँचाने में सक्षम नहीं है। मनुष्य आज भी कोशिकाओं के विखण्डन की प्रक्रिया, जिसे वृद्धावस्था कहते हैं, के कारण मर रहा है।

रोगी यदि अधेड़ है तो उसके पुनः नवीनीकरण का कोई स्थायी प्रभाव नहीं होता। यह ठीक वैसा ही होता है जैसे एक थके हुए मनुष्य को शराब की बोतल से उत्तेजना आती है और शीघ्र ही पुनः गिर पड़ता है। वे आँखें जिनमें थोड़ी देर के लिए चमक आयी थी, वे पुनः निस्तेज हो जाती हैं। मस्तिष्क थोड़ी-सी देर के लिए अत्यन्त तीव्रता से काम करता है और बाद में पुनः कमजोरी अपना प्रभाव दिखाने लगती है। कृत्रिम रूप से उपचारित ग्रन्थियों को उनकी शक्ति से अधिक काम करने हेतु बाध्य किया जाता है। यदि ये वैज्ञानिक इन कोशिकाओं को जैसे वे युवावस्था में स्वयं ही पूर्व-अवस्था को प्राप्त करती थीं, वैसे ही वे वृद्धावस्था में भी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लें, ऐसी कोई खोज विश्वसनीयता से करते तो इस मानव-शरीर के उपयोग की कोई सीमा नहीं होती।

शरीर का सौन्दर्य, शोभा और अभेद्य सुदृढ़ता- ये सब इस बात की ओर संकेत करती हैं कि आपका शरीर पूर्ण निर्दोष है। भोजन ऊर्जा का एक पुंज है। शरीर किसी अन्य स्रोत पर भी निर्भर हो सकता है जैसे–सूर्य, दिव्य प्राण, संकल्प शक्ति आदि। हठ्यौगिक क्रियाएँ संस्थान में आन्तरिक रूप से सुधार करती हैं और कोशिकाओं को नवीन शक्ति, ओज और जीवनी शक्ति प्रदान करती हैं। योगी ऊर्जा के अवशोषण तथा शरीर के संरक्षण के लिए ऊर्जा को प्रयोग करने की विधि का ज्ञान रखते हैं। उनके पास अत्यधिक गरमी या ठण्ढ को सहन करने की शक्ति तथा आहार और जल के बिना जीने की शक्ति होती है। वे ये समस्त शक्तियाँ अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से प्राप्त ऊर्जा

द्वारा प्राप्त करते हैं। शरीर को व्यवस्थित रखने की अन्य विधि है-वायु कुम्भक। इस विधि में वायु को निगला या खाया जाता है। इससे शरीर अभेद्य हो जाता है, उसे कोई चोट नहीं पहुँचा सकता। ऐसे योगी को रोग, मृत्यु तथा कष्ट का अनुभव नहीं होता।

५. जीवन-काल में वृद्धि का यौगिक मार्ग

योग के अनुसार मनुष्य के जीवन में श्वासों की संख्या निश्चित है। प्रति मिनट में श्वासों की संख्या पन्दरह होती है। यदि श्वास रोकने अर्थात् कुम्भक द्वारा श्वासों की संख्या घटा सकें या खेचरी मुद्रा द्वारा श्वास रोकी जा सके, तो आप अपने जीवन काल में वृद्धि कर सकते हैं।

योगी च्यांगदेव जो कि आलन्दी के योगी ज्ञानदेव (महाराष्ट्र) को देखने बाघ पर सवार हो कर गये थे, वे सौ वर्ष जिये। उनके सामने मृत्युदेव यमराज जब आते थे, तो वे अपने प्राणों को सुषुम्रा में ले कर चले जाते और समाधिस्थ हो जाते थे। इस प्रकार उन्होंने मृत्युदेव को पराजित किया। योगियों को इच्छा-मृत्यु की सिद्धि प्राप्त होती है।

६. सौ वर्षीय जीवन हेतु वेदान्तिक विधि

आप दिव्य हैं। इसी के लिए जियें। अपनी दिव्य प्रकृति का अनुभव और साक्षात्कार कीजिए। आपके दैनिक जीवन-संग्राम में जब दुःख, रोग, कठिनाइयाँ और बाधाएँ आयें, निराश न हों, हिम्मत न हारें। अपने भीतर से साहस और आध्यात्मिक शक्ति ग्रहण करें। आपके भीतर शक्ति और ज्ञान का अनन्त कोष विद्यमान है। इस स्रोत के दोहन के तरीके को जानने का प्रयास करें। अपने अन्तर में गहरे गोते लगायें। बैठ जायें। अपने भीतर की पवित्र त्रिवेणी के अमरता के जल में डुबकी लगायें। जब आप दिव्य स्रोत को जायेंगे और 'मैं अमर आत्मा हूँ' का साक्षात्कार करेंगे, तब आप पूर्णतया विश्रान्त, पुनर्युवा और सजीव होंगे।

जब कठिनाइयाँ और दुःख आप पर आन पड़ें, असन्तोष न करें, बुदबुदायें नहीं। प्रत्येक कठिनाई आपकी संकल्प शक्ति को सुदृढ़ करने का सुअवसर है। अपनी सहन शक्ति बढ़ायें और अपने मन को ईश्वर की ओर ले जायें। उनका मुस्करा कर स्वागत करें। आपकी कमजोरी में ही आपकी वास्तविक शक्ति निहित है। आप अजेय हैं। आपको कोई भी चोट नहीं पहुँचा सकता। सभी कठिनाइयों पर एक-एक करके विजय पायें। सद्गुणों का विकास करें। आध्यात्मिक पथ पर चलें और पहचानें- "मैं अमर आत्मा हूँ।" हर बात का सामना प्रसन्न मुखाकृति से करें। ईश्वर के रहस्यपूर्ण मार्गदर्शन को समझें। वे आपके अमर मित्र हैं। निम्न सूत्रों को मानसिक रूप से कई बार दोहरायें, इनके अर्थ पर चिन्तन-मनन करें। इस विधि से डाक्टरों द्वारा असाध्य घोषित किये गये रोग भी ठीक हो सकते हैं। यह निःसन्देह कभी असफल न होने वाली दिव्य औषधि है। हाँ, इतना अवश्य है कि आपको परिणामों की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। स्वयं को सुझाव देना मात्र वेदान्त में ही होता है। इस विचारधारा का सूत्र है-"मैं ईश्वर की कृपा से दिन-प्रति-दिन सभी प्रकार से श्रेष्ठ और श्रेष्ठ बनता जा रहा हूँ।" यह वेदान्त की निश्चित घोषणा और दृढ़ वचन है।

अब गायें और अनुभव करें :

आनन्दस्वरूपोऽहम्

मैं आनन्द की मूर्ति हूँ

मैं आनन्द का सार हूँ

अनामयोऽहम् मैं निरोग आत्मा हूँ

मैं पूर्ण स्वास्थ्य हूँ

मैं न शरीर हूँ, न मन हूँ

मैं आरोग्य की मूर्ति हूँ

मेरे शरीर में कोई रोग प्रवेश नहीं कर सकता

मेरा संकल्प शुद्ध और अटल है

मैं अजर-अमर हूँ

लोग कहते हैं - "नित्य एक सेब फल खाने से डाक्टर दूर रहते हैं।" यह महँगा है। यह सन्देहास्पद है। मैं कहता हूँ- 'आप उपर्युक्त सूत्रों की शक्ति के साथ जियें।" यह अकेला ही आपको सभी डाक्टरों से दूर रखेगा।

यह बहुत ही सस्ता है। यह निस्सन्देह सभी रोगों की रक्षक और रामबाण औषधि है। आप चिकित्सकों के बिल और चिन्ता -दोनों से ही बच जायेंगे। यह साथ-ही-साथ आपको आत्मसाक्षात्कार भी प्रदान करेगी। मुझ पर विश्वास करें। सन्देह त्याग दें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। आप यह नश्वर देह नहीं हैं। सत्-चिद्-आनन्द में प्रसन्न रहें तथा स्वयं को रोग और मृत्यु से मुक्त कर दें।

७.ब्रह्मचर्य द्वारा जीवन में वृद्धि

वीर्य के संरक्षण से पुरुष शरीर की पूर्णता, नवयौवन और दीर्घायु को प्राप्त करता है। यदि पुरुष के शरीर में वीर्य का स्रवण निरन्तर होता रहे, तो या तो यह शरीर से बाहर निष्कासित हो जाता

है या इसका अवशोषण हो जाता है। वर्तमान में अधिकांश प्रमाणित तथा निरन्तर किये जाने वाले वैज्ञानिक अन्वेषणों में पाया गया है कि जब वीर्य का संरक्षण किया जाता है, तो यह संस्थान द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और यह रक्त का पोषण तथा मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। डाक्टर लीयो डेविस कहते हैं-"इस तत्त्व (वीर्य) का संरक्षण शरीर को शक्तिशाली तथा मन को ओजस्वी बनाने और बुद्धि की प्रखरता हेतु आवश्यक है।"

डाक्टर ई. पी. मिलर लिखते हैं- "वीर्य नाश चाहे जाने अथवा अनजाने में हो, यह जीवन शक्ति का प्रत्यक्ष नाश है। अब तो यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि रक्त के कुछ चुने हुए तत्त्व वीर्य के संघटन में भाग लेते हैं। यदि ये निष्कर्ष सही हैं, तो इनसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को स्वस्थ रहने हेतु नैतिकतापूर्ण जीवन जीना अनिवार्य है।"

ब्रह्मचर्य काया-सिद्धि प्राप्त करने का आधार है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। योगाभ्यास द्वारा वीर्य ओज शक्ति में परिवर्तित हो सकता है। ओज शक्ति से समस्त कोशिकाएँ सजीव या विद्युत् शक्ति से सम्पन्न हो जाती हैं। ब्रह्मचर्य के पालन में शीर्षासन, प्राणायाम और ध्यान सहायक होते हैं। ये संस्थान को अन्दर से पुनर्जीवित करते हैं और कोशिकाओं को नवीन बल, ओज और जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं। योगी का शरीर निर्दोष होता है, उसके क्रिया-कलापों में आकर्षण और शिष्टता होती है। वह इच्छा-मृत्यु का स्वामी होता है। इसी कारण भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-"तस्माद्योगी भवार्जुन।" "इसलिए तुम योगी बनो, हे अर्जुन।"

यदि योगी काया-सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो समस्त रोग और उनकी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। वह विपरीत द्वन्द्वों जैसे सर्दी, गरमी आदि से अप्रभावित रहता है। उसमें मल-मूत्र की न्यूनता या अदृश्यता हो जाती है। भूख और प्यास की इच्छा समाप्त हो जाती है। बहुत थोड़ा-सा भोजन वह लेता है या भोजन को पूर्णतया त्याग देता है। किसी भी प्रकार का दर्द अदृश्य हो जाता है। उसे सर्दी, गरमी अथवा दर्द के स्थान पर कुछ सुखदायक अनुभव होते हैं। अणिमा, महिमा और लघिमा-ये सभी सिद्धियाँ काया-सिद्धि के अन्तर्गत आती हैं।

८.दीर्घायु हेतु उत्तम चरित्र की आवश्यकता

सदाचार की प्राप्ति और उसकी स्थापना के द्वारा ही मात्र आप पूर्ण आयु या अनन्त सुख को प्राप्त करने योग्य हो सकते हैं। यदि आप अन्य गुणों से शून्य हैं, तो भी मात्र चरित्र की स्थापना से आप पूर्ण आयु प्राप्त कर सकते हैं। आचार और चरित्र-निर्माण एक ही बात है। आपका चरित्र उत्तम होना चाहिए, अन्यथा आप ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकेंगे, वीर्य या ओज शक्ति का संरक्षण नहीं कर सकेंगे और इसलिए पूर्वकालिक मृत्यु को प्राप्त होंगे। श्रुतियों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष बतायी गयी है। और, आप इसे मात्र ब्रह्मचर्य में स्थित हो कर प्राप्त कर सकते हैं।

आपको एक बात और स्मरण रखनी चाहिए कि दीर्घायु का रहस्य भोजन और पेय के चुनाव तथा संयम, शिष्टता, शुद्धता और जीवन के प्रति आशाजनक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। शराबी, हताश तथा आलसी लोग पूर्ण आयु प्राप्त करने की आशा नहीं रख सकते।

९.दीर्घायु-प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक चिकित्सा

मनुष्य को अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। क्रोध रक्त में विष उत्पन्न करता है और मस्तिष्क, यकृत तथा रक्त और सम्पूर्ण शरीर में गरमी उत्पन्न करता है। यह ज्वर, हताशा आदि भी उत्पन्न करता है।

भय से निम्न रक्त दाब, शक्तिहीनता उत्पन्न होती है। यह लाल रक्त कणिकाओं को नष्ट करता है। यह चेहरे को पीला कर देता है। इसके हृदय, यकृत और आमाशय पर पड़ने वाले प्रभाव से अपच, दस्त या कब्ज और नपुंसकता उत्पन्न होते हैं।

द्वेष से नाड़ियों में तनाव, आकुलता, बेचैनी, खाँसी, ज्वर, रक्त में कमी, अपच आदि रोग होते हैं।

आत्म-त्याग : यह रोगों की सेना जैसे अजीर्ण, गठिया, मधुमेह, यकृत और आँतों के रोग तथा रक्त दबाव को दूर कर देता है। यह हृदय को बलशाली बनाता तथा मस्तिष्क और नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है।

शुद्ध प्रेम : यह प्रसन्नता, मन की शान्ति, शरीर के अंगों के कार्यों में लयबद्धता, रक्त के परिमाण और स्तर में वृद्धि करता है तथा मन को ईश्वर की ओर मोड़ता है।

सत्य : यह हृदय और मन को शक्तिशाली बनाता है, मन की शान्ति, सुख, आन्तरिक शान्ति और आध्यात्मिक दृढ़ता लाता है। इससे भयमुक्तता आती है।

ध्यान : यह एक आश्चर्यजनक शक्तिवर्धक है जो समस्त संस्थानों और अंगों में सामंजस्य लाता है तथा कोशिकाओं को पुनर्नवीन करता है। रोगों को दूर करता है। रोगों की वृद्धि को रोकता है और जीवन में अपेक्षा से अधिक वृद्धि करता है।

जीवन में वृद्धि तथा मृत्यु को दूर रखने के लिए क्रोध, घृणा और भय का उन्मूलन एक मनोवैज्ञानिक विधि है। वैराग्य की उन्नति, प्रेम का विकास, सत्य पर दृढ़ रहना तथा ध्यान का अभ्यास-ये सभी सौ वर्षीय जीवन के लिए आध्यात्मिक औषधियाँ हैं।

१०. दीर्घायु के लिए छाया-त्राटक

छाया पर नित्य त्राटक करने से दृष्टव्य तथा अदृश्य वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसके दर्शन से मनुष्य निस्सन्देह पवित्र बन सकता है। आप जिस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं, इस छाया से प्राप्त कर सकते हैं। जो इस यौगिक क्रिया का अभ्यास करता है, उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि वह जिस काम को करने जा रहा है, उसमें सफलता मिलेगी या नहीं। जिन योगियों ने इस क्रिया को ध्यानपूर्वक किया और इससे लाभ उठाया, उन्होंने घोषित किया है-"जब आकाश स्वच्छ हो, तब सूर्य के प्रकाश में अपनी छाया पर त्राटक करें, उसके बाद आकाश में इसी छाया को देखने का प्रयत्न करें। यदि एक क्षण के लिए भी आपको अपनी छाया आकाश में दिखायी पड़े, तो समझिए आपने उस समय ईश्वर को देख लिया।" जो अपनी छाया को नित्य आकाश में देखता है, वह दीर्घायु प्राप्त करता है। उसकी कभी अकाल मृत्यु नहीं होती। जब छाया का पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखायी दे, तो योगी विजय और सफलता प्राप्त करता है। वह प्राणों पर विजय प्राप्त करके सर्वत्र जा सकता है। इसका अभ्यास अत्यन्त सरल है। साधक को अत्यन्त कम समय में ही परिणाम मिल जाते हैं। जब सूर्य निकले, उसके सामने इस प्रकार खड़े हो जायें कि आपकी छाया भूमि पर पड़े और आप

इसे बिना किसी कठिनाई के देख सकें। अब आप छाया के गले को थोड़ी देर तक एकटक देखें (त्राटक)। अब इसे आकाश में देखें। यदि दिखायी दे, तो यह अत्यन्त शुभ है। छाया आपके प्रश्नों का उत्तर देगी। यदि आप छाया को आकाश में न देख पायें, तो तब तक अभ्यास करें, जब तब आप इसे न देख लें। आप चन्द्रमा के प्रकाश में भी यह अभ्यास कर सकते हैं।

११.वृद्धावस्था को रोकने हेतु व्यायाम

आयु में वृद्धि के साथ-साथ शरीर में विषाक्तता बढ़ना अनिवार्य है। ऐसा कहा जाता है कि यदि यह विषाक्तता रोकी जा सके, तो आयु में वृद्धि से होने वाले रोगों पर रोक लगायी जा सकती है। निम्न विधियों के द्वारा इस विषाक्तता को रोका जा सकता है :

१. विपरीत करणी : प्रातःकाल और सायंकाल कम-से-कम एक घण्टे रोज करें।

२. सरस्वती चालन : प्रातः और सायं कम-से-कम ४५ मिनट। इसके तुरन्त बाद भस्त्रिका करना आवश्यक है।

३. बन्ध-त्रय : निम्नक्रमानुसार बन्ध-त्रय करें। प्रथम सरस्वती चालन, फिर जालन्धर बन्ध, फिर उड्डियान बन्ध और अन्त में मूल बन्ध। यदि उपर्युक्त अभ्यास केवल कुम्भक के साथ संयुक्त करके किये जायें, तो वृद्धावस्था रोकी जा सकती है।

१२. मृत्यु पर विजय के यौगिक रहस्य

जो तीनों नाड़ियों-इडा, पिंगला और सुषुम्ना की क्रिया पर नियन्त्रण कर सकता है तथा जो सुषुम्ना में प्राण को स्थिर कर सकता है और मन का शोधन कर लेता है, मात्र वही काल या मृत्यु को जीत लेता है।

वह जो प्राण को सुषुम्ना में स्थिर करके उसे ब्रह्मरन्ध्र तक ले कर जाता है, उसे समाधि का अनुभव होता है। योगी अपनी मृत्यु के समय को जानता है। वह अपने प्राण को सुषुम्ना में ले जाता है, वहाँ से उसे ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है और इस प्रकार मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

समय या मृत्यु को काल कहते हैं। बहुत-सी स्थितियाँ समय से सम्बद्ध हैं। इसीलिए यह कहा जाता है-"कालयति इति काल:।" जन्म-मृत्यु सभी काल में होते हैं। समय या काल से परे जाने का अर्थ है-अमरत्व प्राप्त करने हेतु जन्म-मृत्यु से परे जाना। सूर्य या पिंगला तथा चन्द्र या इडा नाड़ी-दोनों सभी प्राणियों के लिए दिन और रात का निर्धारण करती हैं। जब तक ये दोनों क्रियाशील रहती हैं। दिन और रात एक के बाद एक आते रहते हैं और इस प्रकार जीवन समाप्त हो जाता है। जब आप श्वास बाहर निकालते हैं, हर बार चार अंगुल श्वास खो देते हैं; क्योंकि आप श्वास तो आठ अंगुल लेते हैं और बाहर निकालते समय बारह अंगुल निकालते हैं। मर्त्य प्राणी में मुख्यतया चन्द्र नाड़ी कार्य करती है। चन्द्र नाड़ी के प्रवाह को रोक कर मनुष्य बहुत लम्बे समय तक जीवित रह सकता है।

सुषुम्ना नाड़ी काल का भक्षण करती है। यह महान् यौगिक रहस्य है। सुषुम्ना में श्वास को रोक कर मनुष्य अच्छे स्वास्थ्य का उपभोग कर सकता है और अपने जीवन में अनन्त काल की वृद्धि कर सकता है। श्वास को सुषुम्ना से सहस्रार (सिर के शीर्ष भाग) में ले जाने से व्यक्ति अमरत्व प्राप्त करता है और अमृत-पान करता है।

जब आपको मृत्यु का ज्ञान हो, तो अपनी श्वास को सुषुम्ना में रोक लें। मृत्यु आपसे दूर चली जायेगी। इस प्रकार आप मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अच्छे स्वास्थ्य का आनन्द उठा सकते हैं और अपने जीवन को अनिश्चित काल तक बढ़ा सकते हैं।

१३. शतायु कैसे बनें ?

चिन्ता न करें। कभी जल्दबाजी न करें। यदि आपको भोजन करने के लिए पर्याप्त समय न हो, तो भोजन न करें। पौष्टिक भोजन लें। नित्य प्रति सात घण्टे सोयें। कभी भी चिकित्सकों से बेवकूफ न बनें। दवाई की दुकान पर न जायें। जब आप नब्बे वर्ष के हो जायें, तो जो चाहे सो करें।

सदा ढीले कालर वाले वस्त्र पहनें; क्योंकि बन्द कालर वाले वस्त्रों से थायराइड ग्रन्थि में रक्त प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है। बहुत अधिक मात्रा में दूध लें। दूध बहुत-सी ग्रन्थियों का स्राव होता है। जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो, खुली हवा में रहें। विशेष रूप से सूर्य के प्रकाश में रहें। खूब व्यायाम करें। श्वास गहरी और नियमित रूप से लेने में सावधानी रखें। नित्य स्नान करें और प्रति एक या दो सप्ताह में एक बार भाप स्नान करें। छिद्र वाले कपड़े, जिनमें वायु का आवागमन सुविधाजनक रूप से हो, पहनें। सिर पर हलका कपड़ा ढाँकें तथा ऊँची एड़ी के जूते न पहनें।

रात्रि में जल्दी सो जायें और प्रातः जल्दी जागें। "शीघ्र सोना और शीघ्र जागना मनुष्य को स्वस्थ, बुद्धिमान् और समृद्ध बनाता है।" बहुत अँधेरे और शान्त कमरे vec pi कम-से-कम एक खिड़की खोल कर सोना चाहिए। कम-से-कम छह घण्टे और अधिक-से-अधिक साढ़े सात घण्टे सोना चाहिए। अल्कोहल त्याग दें। चाय-काफी के प्रयोग में संयम रखें। जो स्थान तनावपूर्ण हों तथा जिन कमरों में रोशनदान और खिड़कियाँ न हों, ऐसी जगह न रहें।

१४. दीर्घायु के कुछ रहस्य

आपको सदा स्मरण रखना चाहिए कि दीर्घायु का रहस्य भोजन और पेय के चुनाव में विवेक तथा संयम, संजीदगी, ब्रह्मचर्य तथा जीवन के प्रति आशाजनक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। पेटू, शराबी, आलसी तथा हताश लोग पूर्ण आयु नहीं प्राप्त कर सकते।

१५. शरीर की पूर्णता हेतु सलाह

ऋषि वाग्भट्ट ने अपने ग्रन्थ अष्टांगहृदय में अध्याय ३९ के २८ से ३२ वें श्लोक में काया सिद्धि की प्राप्ति हेतु एक उपचार बताया है। नीचे काया कल्प की विधि का अनुवाद दिया गया है :

"एक स्वस्थ पलाश के वृक्ष का ऊपरी भाग काट लें और तने में जो खोखला स्थान है, उसमें दो क्यूबिक फिट गहराई तक ताजे आँवले का गूदा भर दें; फिर इसे कमल के तालाब से लायी गयी

मिट्टी से ढाँक दें और ऐसी जगह रखें, जहाँ हवा न लगे और इसके चारों ओर गोबर के कण्डे रख कर आग लगा दें जिससे नमी सूख जाये।

"जब आँवले का गूदा सूख जाये, तो इसे शहद और मक्खन के साथ लेना चाहिए। चाहें तो इसके बाद उबाला हुआ दूध पी सकते हैं। यह उपचार एक माह तक चलता है। इस उपचार में जो पथ्य बताये गये हैं, उनका सावधानीपूर्वक पालन करें तथा ठण्डे पानी का स्पर्श भी न करें।

"इस उपचार में ग्यारहवें दिन की समाप्ति पर बाल, दाँत और नाखून गिरना प्रारम्भ हो जाते हैं और थोड़े दिन बाद व्यक्ति अपना पूर्व रूप-रंग तथा ऐसी शक्ति जो कभी समाप्त नहीं होती और जो एक हाथी के बराबर होती है, प्राप्त कर लेता है। वह सुदृढ़ मांसपेशियों से युक्त तथा बलवान्, अत्यन्त बुद्धिमान् तथा जीवनी शक्ति से पूर्ण हो जाता है और हजार वर्षों तक जीवित रहता है।"

कुछ आयुर्वेदिक वैद्य कहते हैं कि यह काया कल्प चिकित्सा प्रौढ़ आयु के मनुष्य हेतु प्रस्तावित है तथा इसके लिए ग्रन्थों के अनुसार रोगी को ऐसे कमरे में रखना चाहिए जिसके चारों ओर द्रो चारदीवारी होनी चाहिए। इन दीवारों के मध्य दूसरी ओर जाने का मार्ग होना चाहिए और बाकी हिस्सा ईंटों से बन्द होना चाहिए। रास्ते को भी परदे से ढका हुआ होना चाहिए। कमरे में सूर्य का प्रकाश, गरमी, वायु के झोंके आने का कोई मार्ग नहीं होना चाहिए तथा कमरे का तापमान दिन और रात में एक-सा बना रहना चाहिए।

इस काया कल्प से चेहरे की झुर्रिया मिट जाती हैं और उसका मुखमण्डल कान्तियुक्त हो जाता है। वह नव-युवा हो जाता है। वह उपचार के कमरे में रखे घी के दीपक की मद्धिम रोशनी में भी बिना चश्मे की सहायता के पढ़ सकेगा। यह उपचार ४५ दिन तक चलता है। इस उपचार के बाद कुछ असाधारण प्रतिफल भी देखने को मिलते हैं तथा रोगी का शरीर पूर्णरूपेण निर्दोष हो जाता है।

१६. दीर्घायु और शरीर का रूपान्तरण

भारतीय औषधियों द्वारा

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। यह वैज्ञानिक शोधों और अन्वेषणों का युग है। आजकल जीवन में बहुत तनाव है। जीवन में बड़ी स्पर्धा है। मनुष्य को जीवन जीने हेतु बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। उसके मस्तिष्क और नाड़ियों पर अत्यधिक तनाव रहता है। वह बहुत उत्तेजना में रहता है। वह बेचैन रहता है। उसकी नाड़ियों और मस्तिष्क पर अनुचित दबाव है। वह शीघ्र ही थक जाता है। दैनिक जीवन-संग्राम में भयंकर संघर्ष है।

आयुर्वेद आपको उच्चस्तरीय स्वास्थ्य, शक्ति, तेज, जीवनी शक्ति तथा दीर्घायु की प्राप्ति के मार्ग दिखाता है। यह वृद्धावस्था की पहेली को हल करता है। यह युवावस्था के संरक्षण में आपकी सहायता करता है। यह पुनर्जीवन की क्रियाविधि 'काया कल्प' का विवरण प्रदान करता है।

च्यवन ऋषि तथा अन्य प्राचीन ऋषियों ने जिनका शरीर वृद्धावस्था के कारण क्षीण हो गया था, उन्होंने इस 'काया कल्प' विधि से ही अपनी जीवनी शक्ति, बल तथा तेज को पुनः प्राप्त किया और अनगिनत वर्षों तक जीवित रहे।

उन्होंने विभिन्न जड़ी-बूटियों का अवलेह बनाया और इसे ग्रहण किया। इस अवलेह को 'च्यवनप्राश' के नाम से जाना जाता है। यह आज भी भारत के लोगों द्वारा उपयोग किया जाता है।

विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले माण्डव्य ऋषि ने एक आयुर्वर्धक रसायन लिया। उन्होंने इसके द्वारा चिरस्थायी यौवन प्राप्त किया।

संस्कृत शब्द 'काया' का अर्थ है- 'शरीर' तथा 'कल्प' का अर्थ है-'नवीनीकरण' । काया कल्प उपचार का वह प्रकार है जो वृद्धावस्था और दुर्बल शरीर का जीर्णोद्धार करके, उसका पूर्व यौवन और बल प्रदान करता है तथा इन्द्रियों को पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करता है, अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करता है। काया कल्प वर्षों तक नवजीवन तथा जीवन को नये वर्ष प्रदान करता है।

वैज्ञानिक भी ऐसे आयुर्वर्धक रसायन की खोज कर रहे हैं, जो क्षय के विरुद्ध लड़ सके तथा वृद्ध लोगों में शक्ति तथा यौवन उत्पन्न कर सके और मृत्यु के भय को जीत सके।

काया कल्प वात, पित्त और कफ का प्राकृतिक सन्तुलन बनाता है, सप्त धातुओं की क्रियाशीलता को सामान्य करता है तथा कई असाध्य रोगों का उपचार करता है। काया कल्प किसी अनुभवी वैद्य के निर्देशन में किया जाना चाहिए।

क्षय, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण शरीर में लम्बे समय से विभिन्न विषों का एकत्रीकरण है। इसलिए 'काया कल्प' करने के लिए पहले शरीर का निम्न पंचकर्मों द्वारा शुद्धिकरण कर लेना चाहिए : १. नस्य कर्म (नासिका का शुद्धिकरण), २. वमन कर्म (वमन), ३. विरेचन कर्म (विरेचन), ४. निरोपा वस्ति (एनीमा), और ५. अनुवासन वस्ति ।

१७. कल्प चिकित्सा के प्रकार

१. कुटि प्रवेशिका कल्प : इसमें रोगी को अँधेरे कमरे में रहना पड़ता है तथा काली गाय का दूध लेना होता है। कल्प की अवधि में दाढ़ी नहीं बनानी चाहिए, शीतल जल को स्पर्श नहीं करना चाहिए और मित्रों तथा सम्बन्धियों से दूर एकान्त में रहना चाहिए। यह कल्प पूर्ण नव-यौवन प्रदान करता है।

२. अज कल्प : यह कल्प बकरी के दूध द्वारा किया जाता है। बकरी ऐसी होनी चाहिए जो चार पौण्ड दूध दे। इस कल्प में नमक, मिर्च और काफी का निषेध है। इस कल्प से मधुमेह, अजीर्ण, अस्थमा, गठिया तथा अशक्तता निश्चित रूप से ठीक हो जाते हैं।

३. घृत कल्प : इस कल्प में शीत ऋतु में दो माह तक गाय का शुद्ध घी गाय के दूध में डाल कर नित्य प्रातःकाल लिया जाता है।

४. हरड़ कल्प : इसमें ४१ दिन तक प्रातःकाल १ बड़ी हरड़ का सेवन किया जाता है।

५. सोमलता कल्प : यह एक कठिन और सावधानीपूर्वक की जाने वाली तथा तीक्ष्ण दस्तावर प्रक्रिया है। इसमें रोगी कुछ दिनों तक अचेतनावस्था में रहता है। उसकी त्वचा झड़ जाती है; फिर वह चेतनावस्था में लौट आता है और पूर्ण युवा हो जाता है।

६. बोधि कल्प : इस कल्प से व्यक्ति अपनी खोयी हुई स्मरण शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है। यह मानसिक श्रम करने वाले, बौद्धिक श्रम करने वाले, व्याख्याताओं, चिकित्सकों, विद्यार्थियों और विद्वानों-सभी के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। इसमें किसी प्रकार के पंचकर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बहुत ही सरल है। इसको मात्र एक सप्ताह या थोड़े
हिन्दू ऋषियों की पुनर्योवन-प्राप्ति की विधियाँ और दिन करने की आवश्यकता होती है। इस कल्प में तेल, मिर्च, खट्टी चीजें, बरफ, चाय आदि त्याग दें।

७. केश कल्प : इस कल्प से सफेद बाल काले हो जाते हैं। इसमें किसी भी प्रकार के पंचकर्म की आवश्यकता नहीं रहती और भोजन सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसे किसी अनुभवी आयुर्वेदिक वैद्य के मार्ग-दर्शन में करना चाहिए। इसमें वमन की इच्छा होती है।

१८. हिन्दू ऋषियों की पुनर्यौवन-प्राप्ति की विधियाँ

अति प्राचीन काल में ही हिन्दू ऋषि गण उन औषधियों की खोज में सफल हो गये थे जो मानव को आश्चर्यजनक दीर्घायु प्राप्ति हेतु तथा उसकी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति को अक्षुण रखने में सहायक है। काया कल्प चिकित्सा का लक्ष्य ही शारीरिक तथा बौद्धिक शक्तियों का पुनर्नवीनीकरण और दीर्घायुष्य की प्राप्ति है।

यह शरीर इस दृश्यमान् जगत् रूपी सागर को पार करने के लिए एक नौका है। यह इस काम को पूरा करने हेतु तभी सक्षम होगी, जब यह स्वस्थ, सुदृढ़ तथा शक्तिशाली होगी। इसी कारण कई विद्वान् लोगों ने कहा है-"शरीरं आद्यं खलु धर्म साधनम्।" यह शरीर धर्म के अभ्यास हेतु सर्वश्रेष्ठ साधन है।"

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने जब इस काया कल्प उपचार को किया, तो उनको देख कर लोगों को काया कल्प करने की धुन लग गयी। काया कल्प के बारे में बहुत-सी अतिशयोक्तियाँ भी प्रचलित हैं।

लेकिन जो संयमित जीवन नहीं जीते तथा जिनका जीवन-क्रम व्यवस्थित नहीं है, वे इससे लाभ नहीं उठा सकते। काया कल्प उपचार निःसन्देह सभी के लिए नहीं है, यह उन्हीं के लिए है जो आत्मसाक्षात्कार-प्राप्ति के लिए गम्भीरता से प्रयत्नशील हैं तथा इसी जन्म में भगवत्साक्षात्कार प्राप्त करना चाहते हैं और वे जिन्होंने मानव मात्र की सेवा हेतु अपना जीवन सर्पित कर दिया है।

मात्र विषयी जीवन हेतु काया कल्प उपचार करना एक महान् भूल है। आध्यात्मिक लाभ के लिए ही प्राचीन ऋषियों ने इस विधि को विकसित किया।

जो आचार-नियमों का पालन नहीं करते, जो आत्म-संयमी नहीं हैं, जिनमें आध्यात्मिक आदर्श नहीं हैं, जो मात्र सांसारिक जीवन बिताते हैं, ऐसे लोग पूर्णरूपेण पतन के गर्त में गिरे हुए लोग हैं। भोजन, निद्रा, भय और मैथुन-ये चारों मनुष्य और पशुओं में एक-समान हैं; लेकिन एक बात मानव को पशु से अलग करती है, वह है विवेक या विचार शक्ति।

जड़ी-बूटियों से औषधियाँ विशेष विधि द्वारा बनायी जाती हैं। इनसे उपचार करते समय व्यक्ति को विशेष आहार लेना पड़ता है। उसे एक विशेष रूप से निर्मित कुटीर में रहना पड़ता है, जहाँ पर उपचार से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ रहती हैं। कुटी प्रवेशिका कल्प में ऐसे ही प्रतिबन्ध हैं, जब कि अन्य रसायन में ऐसे प्रतिबन्ध नहीं रहते।

आयुर्वेद की रसायन उपचार पद्धति में पारा बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पारा 'शिव बीज' है। पारे को 'नुरपान' के विशेष माध्यम द्वारा मिश्रित किया जाता है। यह शक्ति प्रदान करता है। पारे को शुद्धिकरण की अठारह विधियों द्वारा शुद्ध किया जाता है। यह शक्ति, स्फूर्ति तथा दीर्घायु प्रदान करता है और वृद्धावस्था की व्याधि को दूर करता है। उपचार के द्वारा यदि सफलता प्राप्त हो जाती है, तो युवावस्था के प्रतीक स्वास्थ्य और सौन्दर्य पुनः प्रकट हो जाते हैं, सफेद बाल काले हो जाते हैं और नेत्र-ज्योति में वृद्धि हो जाती है।

वास्तव में जो आवश्यक है, वह है आध्यात्मिक काया कल्प - वह काया कल्प जो सम्पूर्ण जगत् जो पाप से और बेचैनी से पूर्ण है, उसे शुद्ध करे तथा उसकी यौवन, पूर्ण शुद्धता और शान्ति को पुनः स्थापित करे तथा मनुष्यों के मध्य ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना करे। इस दैहिक काया कल्प की तुलना में आध्यात्मिक काया कल्प कई गुणा श्रेष्ठ है। शान्त ध्यान के नित्य अभ्यास द्वारा

आध्यात्मिक काया कल्प किया जा सकता है। योगी अमरता के अमृत का पान करता है। धन्य हैं वे प्राचीन ऋषि, जिन्होंने काया कल्प जैसी विशिष्ट विधि का ज्ञान हमें प्रदान किया ! भगवान् करे, उन सबका आशीर्वाद आप सब पर रहे!

१९. योग तथा काया कल्प द्वारा नव-यौवन की प्राप्ति

योगियों और ऋषियों तथा आयुर्वेद की काया कल्प की विधि, जिसके द्वारा नव-यौवन की पुनः प्राप्ति की जाती है, उसे वैज्ञानिकों तथा चिकित्सकों की पश्चिमी विधि (जिसमें व्यक्ति का उपचार पूर्णतः भौतिक आधार पर किया जाता है) हरा नहीं सकती; क्योंकि काया कल्प की क्रियाविधि महान् तपस्वियों द्वारा प्रयोग की जा चुकी है तथा इसके प्रयोग से वे पुनर्योवन प्राप्त करने में सफल हुए हैं। काया कल्प यथार्थ में आयुर्वर्धक रसायन है जो इस देह को स्थायित्व प्रदान करता है।

इसके द्वारा आप जब तक चाहे अपने शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाये रख सकते हैं। वास्तव में यह शरीर जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक साधन है। कल्पना करें, एक मनुष्य योगाभ्यास करता है। लेकिन वह निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। फिर वह नवीन शरीर को प्राप्त करता है और पुनः योगाभ्यास प्रारम्भ करता है। किन्तु पर्याप्त प्रगति के बिना ही पुनः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो इस प्रकार मरने और पुनः जन्म लेने में बहुत-सा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

इसलिए यदि हमारा शरीर स्वस्थ और शक्तिशाली बना रहे, यदि हम जन्म और मृत्यु से मुक्त हो सकें, तो हमारे पास योग साधना हेतु बहुत समय होगा और हम अपने जीवन-लक्ष्य को यहीं, इसी जन्म में प्राप्त कर सकेंगे। यही रसायनों का सिद्धान्त है। ये शरीर को अमर बनाना सिखाते हैं जिससे हम काया कल्प के साधन, जिसमें कि जड़ी-बूटियों या पारा या गन्धक या नीम या आँवला आदि का प्रयोग होता है, द्वारा जीवन के लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त करें।

इस शरीर का निर्माण मन के द्वारा मन के उपयोग हेतु हुआ है। यह मन ही है जो शरीर का निर्माण करता है। मृत्यु होने पर यह मन इस भौतिक शरीर रूपी आवरण को फेंक देता है और दूसरे

जन्म में नवीन शरीर रूपी आवरण को धारण कर लेता है। यह उसी प्रकार है जैसे मनुष्य जीर्ण-शीर्ण वस्त्र फेंक कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है। मन ऊर्जा के विश्वव्यापी कोष से जितनी चाहे उतनी शक्ति ग्रहण कर सकता है। "यदि मन अगले जन्म में नये शरीर का निर्माण कर सकता है, तो वह यह काम बिना इस वर्तमान शरीर को नष्ट किये, उन कोशिकाओं को नवीन करके जो इस शरीर का निर्माण करती हैं, अभी और यहीं क्यों नहीं कर सकता?" यही रसायनों का सिद्धान्त है और यह सिद्धान्त एकदम सही, ठोस, सैद्धान्तिक और स्थायी है।

२०. दुग्ध द्वारा काया कल्प से नव-यौवन की प्राप्ति

दिव्य वैद्यों अश्विनीकुमारों तथा भगवान् धन्वन्तरि (भगवान् विष्णु के अवतार) जिन्होंने इस आयुर्वेद पद्धति की व्याख्या की, को बारम्बार प्रणाम है।

मानव-जाति के दिव्य वैद्य धन्वन्तरि भगवान् ने कहा है–

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

"अच्युत, अनन्त और गोविन्द-भगवान् के इन नामों का जप करने से समस्त रोगों का नाश हो जाता है, यह मेरा सत्य वचन है।"

भगवान् के नाम में ऐसी शक्ति है। लेकिन उन लोगों के लिए जिनकी भगवान् के नाम में अगाध आस्था और विश्वास नहीं है तथा जो ऐसे जीवन के अभ्यस्त नहीं हैं, भगवान् धन्वन्तरि ने उपचार की एक भिन्न पद्धति प्रदान की जिसे काया कल्प कहते हैं। यह कई प्रकार का होता है। काया कल्प का अर्थ है-असाध्य रोगों या वृद्धावस्था से पीड़ित शरीर को नव-जीवन प्रदान करना। इसका एक अर्थ यह भी है कि शरीर को नवीन शक्ति, स्फूर्ति तथा नवीन स्वास्थ्य प्रदान करना। योगी लोग काया कल्प द्वारा सौ वर्षीय जीवन जीते थे।

काया कल्प का अन्य अर्थ किसी अन्य शरीर में प्रवेश करना भी है। योगियों द्वारा इस प्रकार का काया कल्प 'परकाया प्रवेश' द्वारा किया जाता था। इसमें वे वर्तमान शरीर को छोड़ कर अन्य शरीर में प्रवेश कर लेते थे। यह सभी के लिए सम्भव नहीं है। यह योग की उस विशिष्ट शाखा में प्रवीण योगियों हेतु आरक्षित है।

मैं यहाँ दुग्ध काया कल्प द्वारा नवीनीकरण का विस्तृत विवरण दे रहा हूँ। आपको इसे मात्र जिज्ञासा हेतु न पढ़ कर इसे करना चाहिए और अपने मित्रों में भी इसका प्रचार करना चाहिए।

किसी के स्वास्थ्य में मौलिक परिवर्तन लाने के लिए तथा असाध्य रोगों के प्रभावकारी उपचार हेतु हमें बहुत से काया कल्पों का विवरण मिलता है। उन सबमें सर्वश्रेष्ठ दुग्ध कल्प है। इसमें ताजा निकला गाय का दूध प्रयोग किया जाता है। इस कल्प से आपको अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त होगी। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस कल्प का प्रयोग अनन्त काल तक विषय-सुखों के उपभोग के लिए नहीं, वरन् मानवता की सेवा के लिए स्वयं को स्वस्थ रखने तथा आत्मसाक्षात्कार-प्राप्ति की अपनी साधना को निरन्तर करते रहने के लिए किया।

दुग्ध काया कल्प गाय और बकरी -दोनों के दूध से किया जा सकता है। ये वात, पित्त और कफ तीनों से उत्पन्न होने वाले सभी रोगों में प्रभावकारी हैं। ये तीनों ही समस्त रोगों का कारण हैं। कोई भी रोग इन कारणों में से किसी एक में ढूँढ़ा जा सकता है। विष से उत्पन्न रोगों को दूर करने के लिए गौ मूत्र कल्प किया जाता है। यह गाय के मूत्र से किया जाता है।

दुग्ध की कल्प विधि नीचे दी जा रही है। यह तीस दिनों तक चलता है। इस कल्प से आप उद्विग्न करने वाले बहुत से रोगों से मुक्त हो जायेंगे। यौन-विषय में पूर्ण संयम करें। प्याज, मिर्च तथा अन्य उत्तेजक भोज्य पदार्थ न लें। ये प्रतिबन्ध सम्पूर्ण कल्प अवधि में अनिवार्य हैं। काया कल्प सिरदर्द, ज्वर, क्षय, आँव आना तथा कब्ज में लाभप्रद है। यह आपको अच्छा स्वास्थ्य, यौवन तथा मुख पर तेज प्रदान करेगा।

इस कल्प के लिए सर्वाधिक अनुकूल समय शीत ऋतु के बाद तथा ग्रीष्म ऋतु के पूर्व है। इसके लिए वसन्त ऋतु विशेष रूप से अनुकूल है; क्योंकि इस समय न तो बहुत अधिक गरमी होती है और न ही ठण्ढ अधिक रहती है।

इस कल्प को जब सूर्य उत्तरायण में हो और शुक्ल पक्ष हो, तब प्रारम्भ करना चाहिए। दुग्ध काया कल्प की अवधि में विशेष सावधानी रखनी चाहिए और इस समय शारीरिक व्यायाम तथा जिन कामों में शारीरिक श्रम करना पड़े, वे न करें। इसको प्रारम्भ करने से पहले अपनी आँतों की शुद्धि किसी अच्छे विरेचक जैसे त्रिफला या शुद्ध हरीतकी चूर्ण द्वारा कर लें। इससे संस्थान में एकत्र गन्दगी दूर हो जायेगी।

इस उपचार में ताजे गाय के दूध की मुख्य भूमिका है। ९ छटाँक (४५ तोला अर्थात् ५४० ग्राम) गाय का दूध एक पीतल के कलई वाले बर्तन में या आजकल स्टील के बर्तन में ले लें। इसमें १५ तोला (१८० मि.ली.) करेले का रस मिलायें। यदि करेले का रस न मिले, तो आप ६ माशा (६ मि.ग्रा.) त्रिफला चूर्ण या ९ माशा (९ मि.ग्रा.) त्रिकुट चूर्ण ले सकते हैं। त्रिकुट चूर्ण सोंठ, पीपल और काली मिर्च के चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाने से बनता है। इसे सभी चीजें ३-३ तोला (३६-३६ मि.ग्रा.) मिला कर ताजा ही बनायें। त्रिफला या त्रिकुट चूर्ण किसी अच्छे आयुर्वेदिक स्टोर से प्राप्त किया जा सकता है। चूर्ण को दूध में मिला कर दूध धीमी आँच पर गरम करें। इसे तब तक गरम करें कि यह आधा सेर (४८० मि.ली.) बचे। अब इसे ठण्डा होने दें। इसमें एक तोला (१२ मि.ग्रा.) मिश्री मिलायें। पहले दिन मात्र यही दूध पीना है। अन्य कोई पदार्थ न लें। अगले दिनों में यदि आप दूध के साथ-साथ अन्य कोई पदार्थ लेना चाहें, तो शाम के समय थोड़ी मात्रा में सन्तरे या मौसमी का रस ले सकते हैं।

दूसरे दिन आप १३ छटाँक (७८० मि.ली.) दूध लें। इसमें १/३ भाग करेले का रस मिलायें। यदि आप आप त्रिकुट या त्रिफला चूर्ण मिलाना चाहें, तो उसकी मात्रा नित्य १ मि.ग्रा. बढ़ाते जायें। पूर्व की भाँति दूध गरम करें, ठण्डा करें, मिश्री मिलायें और इसे पियें।

इस प्रकार आपको पूरे एक माह तक करना है। आपको नित्य ४ छटाँक (२४०मि.ली.) दूध बढ़ाना है और इसमें दूध की कुल मात्रा का एक तिहाई करेले का रस या त्रिफला अथवा त्रिकुट चूर्ण की मात्रा नित्य एक माशा (१ मि.ग्रा.) बढ़ायें। अगले पृष्ठ पर दूध, करेले के रस तथा त्रिकुट और त्रिफला चूर्ण की मात्रा बताने के लिए एक सूची दी जा रही है, ताकि आप तत्काल देख सकें। इस सूची के अनुसार आपको मात्रा बढ़ाते हुए तीसवें दिन ७ सेर १३ छटाँक (साढ़े सात लीटर) दूध लेना है और करेले का रस दो सेर नौ छटाँक (२ लीटर ४६० मि.ली.) लेंगे। यदि आप त्रिफला या

त्रिकुट चूर्ण ले रहे हैं, तो तीसवें दिन त्रिफला की मात्रा दो तोला तीन माशा (२७ मि.ग्रा.) तथा त्रिकूट चूर्ण की मात्रा तीन तोला दो माशा (३८ मि.ग्रा.) होगी।

मिश्री का चूर्ण आपको अपने स्वाद के अनुसार मिलाना है। तीसवें दिन दूध को गरम करके १४ छटाँक (८४० मि.ली.) कम करना है। प्रत्येक ९ छटाँक (५४० मि.ली.) दूध पर आपको १ छटाँक (६० मि.ली.) घटाना (गरम करके) है। अर्थात् गरम होने के बाद इतना दूध घट जाना चाहिए।

कल्प हेतु दूध आदि पदार्थों की मात्रा की सूचीकार

तिथि	दूध	करेले का रस	त्रिफला चूर्ण	त्रिकुट चूर्ण
१	५४० मि.ली.	१८० मि.ली.	६ मि.ग्रा.	९ मि.ग्रा.
२	७८० मि.ली.	२७० मि.ली.	७ मि.ग्रा.	१० मि.ग्रा.
३	१ ली.२० मि.ली.	३३० मि.ली.	८ मि.ग्रा.	११ मि.ग्रा.
४	१ ली. २६० मि.ली.	४२० मि.ली.	९ मि.ग्रा.	१२ मि.ग्रा.
५	१ ली. ५०० मि.ली.	५१० मि.ली.	१० मि.ग्रा.	१३ मि.ग्रा.
६	१ ली. ७४० मि.ली.	५७० मि.ली.	११ मि.ग्रा.	१४ मि.ग्रा.
७	१ ली. ९८० मि.ली.	६६० मि.ली.	१२ मि.ग्रा.	१५ मि.ग्रा.

उपचार की अवधि में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस समय शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम से बचना चाहिए। रात में देर तक नहीं जागना चाहिए। कम बोलना चाहिए। दूध के अन्तराल में सन्तरे या मौसमी का रस ले सकते हैं। इस कल्प में भैंस का दूध प्रयोग नहीं किया जा सकता।

यह कल्प असाध्य रोगों को दूर करता है। यह राजयक्ष्मा (टी.बी.) बवासीर, रक्त की अशुद्धता आदि में बहुत लाभप्रद है। यदि आप स्थायी आरोग्यता चाहते हैं, तो पूर्ण विश्वास के साथ निर्देशों का पालन करें और अन्त में कहने वाली बात यह है कि यह उपचार बहुत अधिक कठिन नहीं है। यह आश्चर्यजनक उपचार विधि काया कल्प कहलाती है। विश्वास रखें और इसे स्वयं करें। इसमें न तो प्रारम्भ में दूध की मात्रा बहुत कम होती है और न ही अन्त में बहुत अधिक। पूर्ण आस्था रखें।

भगवान् के नाम का अनवरत जप करें। यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। भगवान् के नाम में आस्था रखें, आपके समस्त रोग दूर हो जायेंगे।

भगवान् की कृपा से आप सभी अच्छा स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति और समृद्धि प्राप्त करें!

२१.सौ वर्षीय जीवन हेतु नीम कल्प

यह तथ्य माना जा चुका है कि जड़ी-बूटियों में अत्यन्त उच्चस्तरीय रोग-निवारक प्रभाव होता है। भारतीय जड़ी-बूटियों से मिलने वाले लाभ को सारा संसार जानता है। जड़ी-बूटियों के उपचार के प्रभाव की कोई तुलना नहीं है। जड़ी-बूटियों में नीम का स्थान बहुत ऊँचा है।

इस आश्चर्यजनक वृक्ष के रोग निवारक प्रभाव का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग उपयोगी है। अति प्राचीन काल से हम इसकी महिमा सुनते आ रहे हैं। यह बहुत से दुःसाध्य रोगों को जड़ से नष्ट कर देता है। इस वृक्ष की पत्तियाँ, फूल और छाल बहुत उपयोगी हैं। ये रोगी को निश्चित रूप से लाभ प्रदान करते हैं तथा उपचार को सफल बनाते हैं।

जो पूर्णरूपेण स्वस्थ हैं, वे भी इस कल्प से एक आरोग्यवर्धक औषधि की भाँति लाभ उठा सकते हैं। इस कल्प से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए पथ्य का पूर्ण पालन करना चाहिए। इसमें यह सावधानी नितान्त आवश्यक है कि रोगी की इच्छा के विरुद्ध कोई काम न किया जाये। रोगी को उपचार सम्बन्धी नियमों का पालन करना अनिवार्य है। इस कल्प के लिए मार्च, अप्रैल, अक्तूबर तथा नवम्बर माह श्रेष्ठ हैं। नीम कल्प से स्त्री और पुरुष समान रूप से लाभ प्राप्त कर सकते

हैं। पुरुषों को यह कल्प रविवार, मंगलवार अथवा गुरुवार से प्रारम्भ करना चाहिए। स्त्रियों को यह कल्प सोमवार, बुधवार, शुक्रवार या शनिवार से प्रारम्भ करना चाहिए।

कल्प प्रारम्भ करने के पूर्व आँतों को किसी अच्छे विरेचक से स्वच्छ कर लेना चाहिए। इस कल्प में निम्न नियमों का पालन अत्यन्त लाभप्रद है।

एकान्त में रहें। धीरे बोलें। कम बोलें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। अच्छे वातानुकूलित (ताजी हवा और सूर्य की रोशनी से युक्त) कमरे में रहें। प्रातःकाल शीघ्र उठ जायें। स्वास्थ्य और साफ-सफाई के सामान्य नियमों का पालन करें।

नीम कल्प इकत्तीस दिनों में सफलतापूर्वक पूर्ण किया जाता है। १ माशा (१ मि.ग्रा.) त्रिवर्ग (नीम की पत्तियाँ, फूल और छाल) लें। उन्हें अच्छी तरह मिला लें और पानी के साथ पीस लें। गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ कुएँ या नदी के ताजे पानी से लें। तीन घण्टे बाद शुद्ध गाय का दूध आधा सेर (४८० मि.ली.) पियें। इसी प्रकार सन्ध्या के समय भी एक माशा (१ मि.ग्रा.) वजन की गोलियाँ बना लें और ताजे पानी से लें और तीन घण्टे बाद शुद्ध गाय का दूध आधा सेर (४८० मि.ली.) पियें। दिन में कम-से-कम तीन बार दूध अवश्य लें। इस काया कल्प में सभी प्रकार के भोजन त्याग दें। दूध पीने से पहले उसमें थोड़ा त्रिकुट चूर्ण (सोंठ, पीपल और काली मिर्च-तीनों के चूर्ण बराबर मात्रा में मिले हुए) मिला लें। इससे दूध का पाचन सरलता से होगा और शक्ति में वृद्धि होगी।

दूसरे दिन चार रत्ती नीम की पत्तियाँ, फूल और छाल लें। इस प्रकार इसकी मात्रा चार रत्ती नित्य बढ़ानी है। नीचे आपको औषधि की मात्रा बताने हेतु सूची दी जा रही है।

प्रथम दिन	सुबह और शाम	१ मि.ग्रा.
द्वितीय दिन	सुबह और शाम	१.५ मि.ग्रा.
सातवें दिन	सुबह और शाम	४ मि.ग्रा.

पन्दरहवें दिन	सुबह और शाम	८ मि.ग्रा.
बीसवें दिन	सुबह और शाम	१०.५ मि.ग्रा.
इकत्तीसवें दिन	सुबह और शाम	१६ मि.ग्रा.

बत्तीसवें दिन से गोलियों की मात्रा एक माशा (१ मि.ग्रा.) नित्य घटाते जानी है। पैंतालिसवें दिन गोली की मात्रा एक माशा (१ मि.ग्रा.) बचेगी और यह कल्प का अन्तिम दिन होगा और अब उपचार लेने वाले को महान् शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होगा।

रोगी को अपने तकिये के नीचे कुछ नीम की पत्तियाँ रखनी चाहिए। इससे संस्थान की गरमी शान्त होगी। इससे आन्तरिक नाड़ी तन्त्र का काया कल्प भी होगा।

पन्दरह नीम की पत्तियाँ एक गिलास पानी में डाल कर सोते समय अपने बिस्तर के पास रखें। प्रातः पाँच बजे जब आप उठें, इसे पी जायें। इसे उषापान भी कहते हैं। यह आपकी आँतों और मूत्राशय को स्वच्छ करेगा। यह कफ और पित्त के दोषों को दूर करेगा। उषापान के बाद व्यक्ति को घूमने चले जाना चाहिए। इससे फेफड़े स्वच्छ हो जायेंगे। शरीर की गरमी कम हो जायेगी। भ्रमण से वापस आने के पश्चात् आधा घण्टे विश्राम करें और हलके प्राणायाम या गहरी श्वास के व्यायाम का अभ्यास करें।

कल्प की अवधि में संस्थान में हलकी गरमी होने के कारण आपको कमजोरी का अनुभव होगा। नींद न आने की भी थोड़ी शिकायत हो सकती है, सिर में चक्कर आने जैसा भी अनुभव हो सकता है तथा कुछ अन्य भी शिकायतें हो सकती हैं; पर आप घबरायें नहीं। ये अधिक दिनों तक नहीं टिकेंगी। शीघ्र चली जायेंगी। ऐसे अनुभवों से विचलित न हों। आपको अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखना है। स्वयं को आवेगों के बहाव में न आने दें।

नीम का प्रभाव शरीर को शीतलता प्रदान करता है तथा शरीर को हलका करता है। यह त्वचा रोगों के उपचार में अत्यधिक लाभकारी है। यह कफ, वात तथा पित्त-तीनों दोषों को दूर करता है।

यह कफ, भूख न लगना, प्यास की अधिकता, मधुमेह, कुष्ठ आदि रोगों के उपचार हेतु अत्यन्त लाभप्रद है। नीम समस्त ज्वरों के उपचार में भी सहायक है। नीम का तेल समस्त त्वचा रोगों, दाँतों में कीड़े तथा संक्रामक रोगों में बहुत उपयोगी है।

यहाँ तक कि अब तो पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि संस्थान को शुद्ध करने वाली समस्त औषधियों में नीम प्रथम स्थान पर आती है।

कल्प उपचार के बाद यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि रोगी कोई भी ऐसी वस्तु न ले, जिससे रोग में वृद्धि हो या रोग पुनः हो जाये। यह सावधानी बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक बार यदि रोगी कल्प को सफलतापूर्वक पूर्ण कर ले, तो उसको रोग से बहुत लम्बे समय तक मुक्ति मिल जाती है।

२२. शतवर्षीय जीवन हेतु तक्र कल्प

तक्र कल्प रोगों का उपचार ही नहीं करता, वरन् यह व्यक्ति को दीर्घायु भी प्रदान करता है। तक्र को मट्ठा या छाछ भी कहते हैं। इसमें समस्त शक्तिदायक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इसमें जितने तत्त्व होते हैं, उनको प्राप्त करने हेतु हमें बहुत-सा भोज्य पदार्थ लेना पड़ता है, जब कि छाछ अकेली ही हमें उनकी पूर्ति कर देती है। यह सामान्य पदार्थों की तुलना में अधिक शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है। इसमें शरीर की कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक अति महत्त्वपूर्ण विटामिन रहते हैं।

आयुर्वेद में आहार के अध्याय में हमारे भोजन के महत्त्वपूर्ण पदार्थों में तक्र का विवरण प्राप्त होता है।

वह मनुष्य जो छाछ पीता है, कभी रोगी नहीं होता। छाछ सभी प्रकार के रोगों को नष्ट कर देती है। यह रोग को शरीर में प्रवेश ही नहीं करने देती। जिस प्रकार स्वर्ग में देवताओं के लिए अमृत बताया गया है, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए छाछ या तक्र को बताया गया है। तक्र या छाछ पीने से मनुष्य प्रसन्न-चित्त रहता है।

कल्प कोष में हमें सुखी और निरोग जीवन के लिए तक्र का सुन्दर विवरण प्राप्त होता है। यह कल्प वंशानुक्रम से होने वाले भयंकर रोगों में भी उपयोगी है। संक्षेप में यह सभी रोगों में उपयोगी है। यह पथ्य-अपथ्य की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के बाद किया जाना चाहिए।

तक्र कल्प के कई प्रकार हैं जैसे-चन्द्र सम्पुटी, अमृत करण तथा अन्य। किन्तु नीचे दी गयी विधि बहुत अधिक उपयोगी है। यह प्रयोग में अत्यन्त सरल है।

यह कल्प चालीस दिनों तक किया जाता है। इसके लिए दही और छाछ बनाने की सबसे सरल और उपयोगी विधि नीचे वर्णित है।

दही बनाने के लिए गाय का दूध सर्वश्रेष्ठ है, यह स्वयं ही एक रसायन है। दही बनाने के लिए शुद्ध गाय का दूध लेना चाहिए। तीन भाग दही में एक भाग पानी मिलायें। अब इसमें से आधे दही में से मक्खन निकाल लें। अब इसमें बाकी बचा आधा दही भी मिला लें और छाछ बनायें। दही प्रातःकाल जल्दी जमा दें और दिन-भर रखा रहने दें और दूसरे दिन इस दही का प्रयोग करें। बासी दही प्रयोग में न लें। जो दही ४८ घण्टे तक रखा रह गया हो, वह कल्प हेतु अनुपयोगी है। यह हानिकारक भी है। दही कभी भी पीतल या ताँबे के बर्तन में न रखें। यह स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त हानिकारक है।

तक्र कल्प प्रारम्भ करने के पूर्व आँतों को पंचकर्म (वमन, विरेचन, नस्य, निरुहम और अनुवासन) द्वारा स्वच्छ कर लें। आँतें ही नहीं, इन्द्रियों को भी शुद्ध करना चाहिए।

कल्प अवधि में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें। कल्प चालीस दिनों तक सतत करें। प्रातःकाल स्नान करें। सूर्योदय के समय १० छटाँक (५० तोला अर्थात् ६०० मि.ली.) छाछ लें, सूर्यास्त के समय भी इतनी ही छाछ लेनी है (यह प्रथम दिन की मात्रा है)। अगले दिन से इसमें २ छटाँक की वृद्धि करनी है अर्थात् ११ छटाँक (६६० मि.ली.) सूर्योदय के समय तथा ११ छटाँक सूर्यास्त के समय लेनी है। इस प्रकार तक्र की मात्रा में एक छटाँक (६० मि.ली.) प्रातः तथा एक छटाँक (६०मि.ली.) सायं वृद्धि करें।

यदि आप सादी छाछ न पी सकें, तो उसमें थोड़ा भुना हुआ जीरा और हींग पीस कर मिला दें तथा थोड़ा सेंधा नमक डाल कर पी सकते हैं।

इकतालीसवें दिन से ४ छटाँक (२४० मि.ली.) नित्य घटाते जायें। इसे तब तक घटाना है, जब तक १ सेर ४ छटाँक (१ लीटर २०० मि.ली.) पर न आ जायें।

कल्प के समाप्त होने पर आप एकदम से सामान्य भोजन ग्रहण न करें। कुछ दिनों तक नमक और मिर्च न लें। प्रारम्भ में मात्र फलों का रस, पालक, लौकी, परवल और हरी सब्जियाँ लें। फिर धीरे-धीरे सामान्य भोजन लेने लग जायें। यह कल्प वर्षा और शरद ऋतु में नहीं करना चाहिए।

यदि छाछ हलकी है, तो यह दस्तों को रोकने में उपयोगी है। यदि स्वाद में खट्टी है, तो यह पित्त में वृद्धि रोकती है। यह पाचन में सहायता करती है। यह पाचन शक्ति में वृद्धि करती है तथा वात, पित्त और कफ के हानिकर प्रभावों को दूर करती है।

शीत ऋतु में यह पाचन सुधारती है और मुँह के बुरे स्वाद को ठीक करती है। यह नाड़ियों की गति को सामान्य करती है।

२३. सौ वर्षीय जीवन के लिए ब्राह्मी कल्प

हिमालय क्षेत्र में पायी जाने वाली औषधीय बेलों में ब्राह्मी एक सुन्दर जड़ी है। यह शीत ऋतु में बहुतायत में उपलब्ध रहती है।

इसमें वसन्त ऋतु में पुष्प आते हैं। वर्षा ऋतु में यह समाप्त हो जाती है। जड़ी-बूटियों के शब्दकोष में ब्राह्मी को सोमवती या सरस्वती के नाम से जाना जाता है। यह गीले बालू वाले पहाड़ी क्षेत्रों में, जहाँ नमी रहती है, पायी जाती है।

शिशिर और वसन्त ऋतु में यह लाभदायक रस से पूर्ण रहती है और इन्हीं ऋतुओं में इसे एकत्र किया जाता है। पत्तियों को साफ स्थानों से जो ताजी हवा वाले हों, एकत्रित किया जाना चाहिए। अशुद्ध या अपवित्र स्थानों से पत्तियाँ नहीं एकत्र करनी चाहिए।

ब्राह्मी के भीतर आश्चर्यजनक गुण हैं। यह शारीरिक और बौद्धिक क्षमता में वृद्धि करती है। यह कुष्ठ रोग और धवल रोग में लाभकारी है। इसका प्रभाव अत्यन्त शीतल है। यह आँतों को

साफ करने के लिए अच्छी है। इसका स्वाद कड़वा है। यह बौद्धिक क्षमता तथा आयु में वृद्धि करती है।

यह स्वर को मधुर करती है। यह मूत्र को शुद्ध करती है। यह रक्त की अशुद्धियों, अपस्मार (मिरगी), स्मरण शक्ति में ह्रास, स्वप्नदोष, मासिक धर्म की अनियमितता, नाड़ी दौर्बल्य, बच्चों के रोग, न्यूमोनिया आदि में उपयोगी है। बच्चों के रोग, न्यूमोनिया और खाँसी में पीस कर इसका गले पर लेप करें।

यहाँ तक कि पश्चिमी लोगों ने भी ब्राह्मी पर महान् शोध की है। वहाँ पर इसे ग्रेटिओला, मोनीरा, हाइड्रोकोटाइल एसिएटिका कहते हैं। उनका ऐसा कहना है कि ब्राह्मी को धूप में नहीं सुखाना चाहिए। यदि इसे धूप में सुखाया जाता है, तो इसके कुछ गुण कम हो जाते हैं।

ब्राह्मी कल्प में ताजी ब्राह्मी का प्रयोग किया जाता है। ताजी ब्राह्मी में आश्चर्यजनक जीवनवर्धक क्षमता तथा बहुत से लाभदायक गुण होते हैं। यह तत्क्षण मनुष्य को रूपान्तरित कर देती है। ब्राह्मी कल्प ३१ दिनों तक किया जाता है। जो व्यक्ति ब्राह्मी कल्प करने वाला हो, उसे सर्वप्रथम अपनी आँतों को साफ कर लेना चाहिए। अगले दिन स्नान व अन्य शुद्धिकरण की क्रियाओं के पश्चात् ६ माशा (आधा तोला अर्थात् ६ मि.ग्रा. मात्रा ब्राह्मी की पत्तियाँ, जड़ और शाखाएँ) ले कर अच्छी तरह पीस लें। जितना महीन पीसेंगे, उतना अधिक लाभ होगा।

इसमें से आधी मात्रा सूर्योदय के समय लें। तीन घण्टे बाद आधा सेर (४८० मि.ली.) अथवा जितना आप पचा सकें, उतना दूध पियें। बची हुई आधी मात्रा सूर्यास्त के समय लें और तीन घण्टे बाद दूध ग्रहण करें। आप अपनी इच्छा के अनुसार दूध की मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं। दूध गरम करते समय उसमें ६ माशा (६ मि.ग्रा.) ताजी ब्राह्मी की पत्तियाँ डाल कर अच्छी तरह उबालें। दूध को ठण्ढा कर लें। यदि गाय का शुद्ध दूध अप्राप्य हो, तो बकरी का दूध ले सकते हैं। तीन-चार दिन यदि आपको दूध पचाने में कष्ट का अनुभव हो, तो दूध में सोंठ और पीपल का चूर्ण भी मिला सकते हैं।

कल्प की अवधि में अनाज से बनी कोई वस्तु न लें। दूध के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न लें। अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखें। प्रार्थना और ध्यान में अधिक समय दें। यदि आप विश्राम करना चाहें, तो उसके लिए बायीं करवट लेटने का नियम है।

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि दूध प्रत्येक दिन सुबह ताजा दुहा लिया जाये। ब्राह्मी की मात्रा में निम्नानुसार वृद्धि करनी चाहिए। कल्प की पूर्ण समयावधि ४५ दिन है।

प्रथम दिवस	३ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
द्वितीय दिवस	४ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
तृतीय दिवस	५ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
सप्तम दिवस	९ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
पन्दरहवें दिन	१७ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
इक्कीसवें दिन	२३ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय
इकतीसवें दिन	३३ मि.ग्रा.	प्रातः एवं सायं-दोनों समय

बत्तीसवें दिन से सुबह-शाम २-२ माशा (२-२ मि.ग्रा.) नित्य घटाते जायें। इस प्रकार पैंतालिसवें दिन ब्राह्मी की मात्रा प्रत्येक समय ३-३ माशा 3 - 31 मि.ग्रा.) बचेगी, जो प्रथम दिन थी।

कल्प की समाप्ति के बाद भोजन में धीरे-धीरे वृद्धि करें। सबसे पहले फलों का रस लें। उसके बाद हरे चने, फिर पुराना चावल तथा आहार में शीघ्र पचने वाले पदार्थ लें। सामान्य आहार प्रारम्भ करने के पहले तक ये सभी पदार्थ लें। उपचार की अवधि में आप प्याज, तेल, मिर्च, इमली (खट्टे पदार्थों) आदि से परहेज रखें।

२४. शतवर्षीय जीवन हेतु आयुर्वेदिक उपचार

आयुर्वेदिक पद्धति में मृत्यु को दूर रखने तथा दीर्घायु प्राप्ति के लिए रसायन उपचार बताया गया है। वर्तमान समय में यह पद्धति उपेक्षित हो गयी है। इस उपचार के अनुसार वृद्धावस्था एक व्याधि है और इसका उपचार किया जाना चाहिए। अकाल मृत्यु से बचना चाहिए।

रसायनों द्वारा उपचार से जीवन को अनन्त समय तक अक्षुण रखा जा सकता है। मनुष्य की वृद्धावस्था तथा वे रोग जिनके उपचार में सामान्य विधियाँ असफल हो जाती हैं, उन्हें दूर करने के विज्ञान का नाम रसायन है।

जो दीर्घायु, स्मरण शक्ति, स्वास्थ्य और स्फूर्ति में वृद्धि करे, उसे रसायन कहते हैं। इसे रसायन इसलिए कहा जाता है; क्योंकि यह शरीर के रसों तथा अन्य तत्त्वों पर प्रभाव डालता है। यह उपापचय संस्थान को बल प्रदान करता है तथा रक्त में वृद्धि करता है और साथ-ही-साथ सम्पूर्ण शरीर को शक्तिशाली बनाता है।

विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले माण्डव्य ऋषि ने जड़ी-बूटियों द्वारा ही दीर्घायु और सिद्धि प्राप्त की थी और यही च्यवन ऋषि ने च्यवनप्राश से किया। जो लोगों को दीर्घायु प्रदान करे, वही रसायन है।

रसायन उपचार गन्धक, पारा, कुचला के बीज, नीम, हरीतकी और आँवला द्वारा किया जाता है।

रसायन इस भौतिक शरीर को अमर बना सकते हैं। रसायन इस जीवन के परम लक्ष्य 'आत्मसाक्षात्कार' की प्राप्ति हेतु इस भौतिक शरीर को दीर्घकाल तक स्वस्थ और सुदृढ़ बनाये रखते हैं। यदि यह शरीर स्वस्थ और सुदृढ़ रहे, तो योग के साधकों को लक्ष्य प्राप्ति हेतु साधना के लिए बहुत अधिक समय मिल सकेगा। इससे बार-बार मरने और जन्म लेने में बहुत समय व्यर्थ नष्ट नहीं होगा, यही रसायनों का सिद्धान्त है।

आयुर्वेद में दीर्घायु-प्राप्ति तथा काया कल्प की बहुत-सी विधियाँ वर्णित हैं। इनमें से एक 'रसराज रसायन' है। इसका नाम पारे पर रखा गया है। यह रसायन प्राचीन औषधियों, रसायनों तथा आचार रसायनों के मध्य सर्वप्रथम स्थान पर आता है।

"एकोसौ रसराजः शरीरं अजरं अमरं कुरुते।" मात्र एक ही वस्तु है जो इस शरीर को अजर-अमर कर सकती है, वह है पवित्र 'पारा'।

अन्य रसायनों जड़ी-बूटी जैसे-सोम, नील, नारी, पद्मा, हरीतकी और आँवला से भी दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। आँवला और हरीतकी शरीर के दोषों को सन्तुलित रखते हैं तथा अपूर्व शक्ति प्रदान करके तथा पौरुष में वृद्धि करके तथा शरीर को बहुत से रोगों से मुक्त करते हैं। कुटी प्रवेशिका कल्प में रोगी को कमरे में रखा जाता है तथा अन्य कल्पों में रोगी को खुले में रखा जाता है।

आचार रसायन द्वारा काया कल्प : यह यम-नियम के पालन द्वारा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। यह योगियों और ऋषियों की भिन्न प्रकार की उपचार पद्धति है।

सुश्रुत के अनुसार रसायन उपचार युवावस्था या प्रौढ़ावस्था में करना चाहिए। वृद्धावस्था में जब शरीर जर्जरावस्था में होता है, इस उपचार को करने पर वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते।

२५. शतायु के लिए प्राकृतिक रहस्य

रोग वह अवस्था नहीं है, जिससे भयभीत हुआ जाये। यह हमारे शरीर के बाहर से नहीं आता । रोग जीवन के साथ दुर्व्यवहार का परिणाम है। मात्र स्वास्थ्य का ही अस्तित्व है। जीवन से ले कर मृत्यु तक मात्र आरोग्य ही है। यह जीवन ही है जो मनुष्य को जीने योग्य बनाता है।

यहाँ तक कि रोग भी आरोग्य का चिह्न मात्र है। यह हमारे शरीर में बाह्य पदार्थ के प्रवेश के फलस्वरूप जीवन की प्रतिक्रिया है। शरीर की सफाई की क्रिया को ही रोग कहा जाता है। यह बहुत से रूप ग्रहण कर लेता है; पर अनिवार्य रूप से सभी रोग एक ही हैं। रोग बहुत से न हो कर, मात्र एक ही है और वह है जीवन का शरीर में प्रविष्ट बाह्य हानिकारक पदार्थ से संघर्ष। रोग से मुक्ति के लिए मनुष्य को अपनी जीवनी शक्ति की सहायता लेनी चाहिए, जिससे वह शरीर में प्रविष्ट हुए बाह्य पदार्थ से छुटकारा पा सके।

शरीर में आ गये बाह्य पदार्थ से मुक्ति के प्रयास में जो लक्षण या रोग प्रकट होते हैं, उन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सकों द्वारा दी गयी विषैली दवाइयों से दबाना नहीं चाहिए। प्रकृति को स्वयं ही बाह्य पदार्थों से संघर्ष करने दें और उपवास करके जीवनी शक्ति को आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सहायता करें, ताकि वह यह कार्य बिना किसी बाधा के कर सके।

जीवन की रक्षा में भोजन का पाचन महान् बोझ है। यदि आप रोग की अवधि में भोजन करते हैं, तो वह जीवनी शक्ति जो संस्थान से मल (बाह्य पदार्थ) को साफ करने में लगी हुई है, वह उस काम को छोड़ कर भोजन पचाने के काम में लग जाती है, जिससे स्थिति और अधिक बिगड़ जाती है। जीवनी शक्ति को संस्थान को स्वच्छ करने का काम करने दें। रोग के समय भोजन न करें। इससे आपके शरीर में आ गये बाह्य पदार्थ से जीवनी शक्ति शीघ्रता से मुक्ति पा लेगी।

प्रकृति पाचन को निष्कासन से अधिक प्राथमिकता देती है। निष्कासन प्रतीक्षा कर सकता है (चाहे वह स्वास्थ्य की कीमत पर क्यों न हो); किन्तु पाचन एक क्षण के लिए भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। जैसे ही भोजन आमाशय में पहुँचता है, तत्क्षण ही पूरी तीव्रता से पाचन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है; इसलिए जीवनी शक्ति को अपनी शरीर से विष हटाने की क्रिया को छोड़ना पड़ता है और पाचन में सहायता करनी पड़ती है, जिससे रोग की स्थिति और भी जटिल हो जाती है। चिकित्सक ऐसे समय पर भोजन ग्रहण करने के लिए यह तर्क देते हैं कि भोजन शरीर चलाने के लिए आवश्यक है, जब कि सत्य इसका एकदम उलटा है। भोजन शरीर को नहीं चलाता, वरन् यह जीवन है जो भोजन ग्रहण करता है और इसके पाचन और निष्कासन हेतु आवश्यक ऊर्जा का उत्पादन करता है। जीवन स्वयं ही जीता है। भोजन जीवन में शरीर के निर्माण तथा क्षतिपूर्ति हेतु आवश्यक है, यह बात सभी के द्वारा स्वीकार और अनुभव की गयी है। अब आप यह भली-भाँति समझ गये होंगे कि रोग की अवधि में आपको उपवास रखना चाहिए; क्योंकि उपवास के द्वारा आप अपनी जीवनी शक्ति को संरक्षित रख सकते हैं और भोजन के पाचन और अभिशोषण में इसके होने वाले व्यय को रोक सकते हैं तथा इसे शरीर में प्रविष्ट बाह्य पदार्थों के निष्कासन हेतु मुक्त कर सकते हैं।

इसके बाद आहार पर आते हैं। भोजन सात्त्विक होना चाहिए तथा इसे अपने शरीर की आवश्यकता जितना ही लिया जाना चाहिए। शरीर के लिए अत्यन्त अल्प मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। हालांकि हमारी दयालु माता प्रकृति ने हमें शरीर को आवश्यकता से थोड़ा

अधिक भोजन पचाने की क्षमता प्रदान की है। जीवन हेतु जितना भोजन आवश्यक है, उससे थोड़ा अधिक मनुष्य पचा सकता है। इस पाचन क्षमता का सावधानीपूर्वक प्रयोग करने से मनुष्य रोगी नहीं होता। इस पाचन क्षमता का अतिक्रमण करने पर ही मनुष्य रोगी हो जाता है; क्योंकि तब संस्थान में उसकी क्षमता से अधिक भोजन डालते हैं तथा यह जो अतिरिक्त भोजन है, वह जीवन पर बोझ है और वह इससे मुक्त होना चाहता है। जो भी अतिरिक्त भोजन रहता है, वह आमाशय में खमीरीकृत हो जाता है तथा बहुत-सी विषैली गैसें उत्पन्न करता है और शरीर को उनका निष्कासन करना पड़ता है और यह निष्कासन की प्रक्रिया ही रोग कहलाती है।

वह योगी है जो अपने जीवन की आवश्यकता-पूर्ति जितना ही भोजन ग्रहण करता है। उसका मन सात्त्विक रहता है, उसे शान्ति मिलती है तथा वह अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु का आनन्द उठाता है।

वह भोगी है जो अपनी पाचन क्षमता जितना भोजन लेता है। वह अपनी पाचन क्षमता की सीमा को पार नहीं करता और इसीलिए वह अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन का आनन्द उठाता है। वह राजसिक प्रकृति का होता है और इन्द्रियसुखोपभोग में लिप्त रहता है। जब पाचन क्षमता से अधिक भोजन लिया जाता है, तो मनुष्य रोगी हो जाता है। ऐसा मनुष्य तामसिक प्रकृति का होता है। वास्तव में ऐसा मनुष्य जीवित शव के समान है।

सात्त्विक भोजन शरीर का पोषण करके जीवन की सहायता करता है। फल, सब्जियाँ, खड़े अनाज, मूँगफली, हरी पत्तेदार सब्जियाँ और दूध-ये सभी सात्त्विक भोज्य पदार्थ हैं। इनमें अत्यन्त मूल्यवान् पोषक तत्त्व होते हैं। ये सभी उत्तम भोज्य पदार्थ हैं। शरीर को इनको पचाने के लिए बाह्य पदार्थों की जैसे-मिर्च, मसाले, नमक, इमली आदि की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम भोजन को अधिक पका कर अपने भोजन का सारतत्त्व नष्ट कर देते हैं, तो भोजन को आमाशय में ले जाने के लिए इन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, जो इस कार्य को हवाई जहाज की तरह करते हैं। उपर्युक्त पदार्थ, उत्तेजक पदार्थ तथा चाय, काफी और अन्य अल्कोहल युक्त तथा ठण्ढे पेय पदार्थ नाड़ियों और आन्तरिक संस्थान को उत्तेजित करते हैं तथा ये रोगों और अमरता के बुरे विचारों के सन्देह वाहक हैं।

जिन पदार्थों को हमारे भीतर स्थित जठराग्नि नहीं माँगती, उन भोज्य पदार्थों को भीतर धकेलने के लिए ही भूख बढ़ाने वाले पदार्थों की माँग की जाती है। हमारे भीतर की जठराग्नि स्वयं ईश्वर है। यह वैश्वानर अग्नि है। मनुष्य को इस ईश्वर के प्रकट होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए और फिर उन्हें भोजन अर्पित करना चाहिए। आजकल लोग भूख लगने की प्रतीक्षा नहीं करते, वे जिह्वा की तीव्र आकांक्षा को ही भूख मानने की भूल करते हैं। ऐसे लोगों ने कभी भूख के आनन्द का अनुभव नहीं किया है। वे खाने की इच्छा को ही भूख समझ लेते हैं। भूख चूँकि ईश्वर का ही रूप है, इसलिए इसकी प्रकृति ईश्वर की भाँति ही अवर्णनीय है। व्यक्ति को इसका अनुभव करना चाहिए तथा इसका ज्ञान होना चाहिए कि यह क्या है? इसे बताया नहीं जा सकता। लेकिन भूख के बारे में जानने के लिए आपकी सहायता करने के लिए नीचे कुछ संकेत दिये जा रहे हैं जिससे जब भूख आयेगी तो आप पहचान सकेंगे।

सर्वप्रथम जो आपने पहले खाया, उस भोजन के मल का निष्कासन हो जाना चाहिए या अन्य शब्दों में पूर्व में ग्रहण किये हुए भोजन का पाचन, एकीकरण, अवशोषण आदि समाप्त हो जाना चाहिए। जब आपकी आँतें पूर्णतया खाली हो जायेंगी, तो आपको एक विशेष प्रकार का हलकापन अनुभव होगा। आप प्रसन्न और हलका अनुभव करेंगे। आपकी काम करने की इच्छा होगी। आपको मन तथा बुद्धि की निर्मलता प्राप्त होगी। यदि आपको ऐसा अनुभव न हो, तो समझ लीजिए कि आपके भीतर कुछ मल अभी भी शेष है। जब आपको हलकापन अनुभव हो, उसके बाद आपको काम करना चाहिए। यदि आप भोजन करना चाहते हैं, तो आपको काम या सेवा कार्य करना ही चाहिए। इससे आपका पेट पतला हो जायेगा। आपकी सम्पूर्ण जीवनी शक्ति काम करेगी। आपको काम करने में खुशी होगी। फिर धीरे से भूख स्वयं प्रकट होगी। आपको पेट में गैस उठने का अनुभव होगा। यह साफ और दुर्गन्ध रहित होगी। यह इस बात का संकेत है कि भूख आ गयी है। थोड़े समय बाद आप भोजन ग्रहण कर सकते हैं। जब वास्तविक भूख प्रकट होती है, तो यह भोजन के प्रति तीव्र उत्कण्ठा नहीं जगाती। यह वैसी क्षुधातुर भूख की तरह नहीं होती जो आपको भोजन पर टूट पड़ने के लिए तथा उसे शीघ्र निगलने हेतु मजबूर करे। इसके विपरीत यह भूख शरीर के निर्माण और क्षति-पूर्ति हेतु भोजन की मधुर आकांक्षा होगी।

यदि आपको खाने की आकांक्षा मात्र होगी, तो आप भोजन का आनन्द नहीं ले पायेंगे। आप मात्र अपनी जिह्वा को सन्तुष्ट करने के लिए भोजन की माँग करेंगे और भोजन की प्राकृतिक

मिठास का आनन्द नहीं ले पायेंगे। आपको यह बेस्वाद तथा नीरस लगेगा। किन्तु जब आपको सच्ची भूख होगी, तो आप पायेंगे कि प्राकृतिक भोजन अत्यन्त मधुर है और आप इसकी मधुरता का आनन्द उठा सकेंगे।

भोजन धीरे-धीरे खायें। अच्छी तरह से प्रत्येक ग्रास को चबायें। स्टार्च का पाचन मुख में स्वयं ही हो जाता है। ऐसे भोज्य पदार्थ न लें, जिनको निगलना पड़े। विशेष रूप से हलवा, पूरी, पराँठा आदि खाने की आदत बहुत खराब है। हलवा आपको उस भोजन को निगलने हेतु विवश करेगा, जिसे आपको भली प्रकार चबाना आवश्यक है। मिर्च-मसाले आपको अति भोजन हेतु विवश करते हैं। इसलिए ये अत्यधिक हानिकारक हैं।

चाय और काफी की आदत भी छोड़ देनी चाहिए । चाय, काफी तथा ऐसे अन्य पेय कोई भोज्य पदार्थ नहीं हैं। ये मात्र उत्तेजक हैं। ये आपकी जीवनी शक्ति को पी जाते हैं तथा आपको इसे बाहर निकालने के लिए विवश कर देते हैं। इनके द्वारा आपको एक अप्राकृतिक ऊर्जा का अनुभव होता है और आप उस ऊर्जा को व्यय करना चाहते हैं। ये आपकी ऊर्जा का संग्रह न करके इसे रिक्त करते हैं। इसलिए आप इनके द्वारा धीरे-धीरे अपनी जीवनी शक्ति का ह्रास करते हैं।

आपको यह भी ज्ञात होना चाहिए कि कब भोजन ग्रहण करना रोक देना चाहिए। प्रकृति स्वयं ही संकेत करती है। आपको भोजन ग्रहण करते समय जब डकार आयेगी, तो यह आपके भोजन के प्रमुख पदार्थ की खुशबू के साथ होगी। यह वायु ही इस बात का संकेत है कि 'यह मेरे लिए पर्याप्त है।' और आपको तत्काल भोजन रोक कर उठ जाना चाहिए। इसके बाद भोजन करना आमाशय पर अति भार होगा और यह कष्ट उत्पन्न करेगा। इसलिए भोजन सम्बन्धी प्रथम नियम है कि भूख की प्रतीक्षा करें।

दूसरी बात यह ध्यान रखने की है कि आप जो भोजन ग्रहण कर रहे हैं, उसका जीवन सत्त्व नष्ट नहीं होना चाहिए। आपको इस बात का ध्यान रखना आवश्यक नहीं है कि आप जो भोजन ले रहे हैं, उसमें कौन से विटामिन हैं और कौन से नहीं; बल्कि आपको यह जानना आवश्यक है कि लवण और विटामिन हमारे भोजन के आवश्यक अंग हैं। ये दोनों शोधक तत्त्व हैं। ये मल को बाहर निकालने में सहायता करते हैं। पाचन से निष्कासन अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इसके प्रति अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि मल का निष्कासन सन्तोषजनक है, तो शरीर में

कोई बाह्य पदार्थ नहीं रहेगा और उसमें मल का संग्रहण नहीं होगा, जिससे कोई विषैले पदार्थ भी नहीं बनेंगे, जिससे जीवनी शक्ति अपना सम्पूर्ण बल बाह्य पदार्थों को बाहर निकालने में लगा सकेगी। विटामिन तथा प्राकृतिक लवण इस निष्कासन की क्रिया में सहायता करते हैं। भोजन के प्रत्येक पदार्थ में उसके पाचन तथा व्यर्थ पदार्थ के निष्कासन के लिए आवश्यक विटामिन स्वयं ही उपस्थित रहते हैं और चूँकि आप उस पदार्थ द्वारा उन सभी विटामिनों को ले ही रहे हैं जिन्हें विज्ञान हमारे लिए आवश्यक बताता है, तो आपको भोजन में उपस्थित विटामिनों के बारे में चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इस बात की सावधानी अवश्य रखें कि आपका भोजन उसके प्राकृतिक विटामिनों से भरपूर रहे; लेकिन ऐसा तभी सम्भव है, जब आप ताजे भोज्य पदार्थ, ताजे फल और सब्जियाँ लें। ये इस दृष्टिकोण से अच्छी होती हैं और विटामिनों से भरपूर होती हैं। फल और सब्जियाँ विशेष रूप से बहुत अधिक मात्रा में सूर्य का प्रकाश अवशोषित करती हैं, इसलिए उनमें प्रचुर मात्रा में विटामिन पाये जाते हैं।

आपको सब्जियों को पकाने में भी सावधानी रखनी चाहिए। वैसे तो इनको कच्चा ही खाना चाहिए; परन्तु यदि आप उनको पकायें तो मात्र उबालें, और उबालने में बहुत ही कम पानी का प्रयोग करें, क्योंकि बहुत अधिक पानी लेने से सामान्य रूप से यह सब्जियों के अनिवार्य तत्त्वों के साथ छन कर फिंक जायेगा। सब्जियों को अधिक तलना भी नहीं चाहिए और मसालों का भी अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पालिश किये हुए चावल, दाल तथा अन्य अनाज बहुत अधिक हानिकारक होते हैं; अतः इनका प्रयोग न करें। प्रत्येक गृहस्थ के पास अपनी स्वयं की चक्की होनी चाहिए। इससे अनाजों का अनिवार्य अंश अलग नहीं होगा, जो मशीनों में अलग हो जाता है। इससे मात्र उनका छिलका ही अलग होगा।

भोजन तभी करें, जब आपको भूख लगे और तब ताजी चीजें उनके जीवन सत्त्व के साथ ग्रहण करें। इतना ही नहीं, आपको यह भी सुनिश्चित करना होगा कि ये पदार्थ पोषकता और विटामिनों से भरपूर हों। आपको उस मिट्टी पर भी ध्यान देना चाहिए, जहाँ वे उगाये जा रहे हैं। भूमि में कृत्रिम खाद नहीं डाली जानी चाहिए। रासायनिक खादों से भोज्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में अवश्य उत्पन्न होते हैं, वे दिखने में भी आकर्षक होते हैं; लेकिन वे पोषण तथा विटामिनों से परिपूर्ण नहीं होते।

इन सभी चीजों की सुनिश्चितता हेतु सर्वश्रेष्ठ मार्ग यह है कि आप उस भूमि के निकट रहें, जहाँ आप ये भोज्य पदार्थ उगा रहे हैं। प्रकृति की व्यवस्था इस प्रकार की है कि पौधे जो उगाते हैं, मनुष्य उन्हें लेता है और इन्हें मल-मूत्र तथा प्रश्वास के रूप में पौधों को वापस कर देता है। इस प्रकार यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। यदि यह चक्र व्यवस्थित रूप से चलता रहे, तो मानव और भूमि- दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। आजकल लोग बड़े शहरों में भीड़ लगा रहे हैं। वे अपना भोजन तो गाँवों से प्राप्त करते हैं; लेकिन जिस भूमि से वे अपना भोजन प्राप्त करते हैं, उसे बदले में वापस कुछ नहीं लौटाते। भूमि के लिए सबसे अच्छी खाद वह मल है जो प्राकृतिक भोजन ग्रहण करने वाले तथा प्राकृतिक जीवन जीने वाले लोगों के शरीर से निष्कासित होता है। ऐसी खाद डालने पर मिट्टी मनुष्य के लिए विटामिन और पोषक तत्त्वों से भरपूर भोजन का उत्पादन करती है।

यदि उपर्युक्त तीनों शर्तें पूरी की जायें, तो आप अच्छे स्वास्थ्य का उपभोग करेंगे और कभी रोगग्रस्त नहीं होंगे।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात जो सदा याद रखने की है, वह है कि अपने मन को सदा स्वस्थ रखें। इसे सदा स्वस्थ विचारों से आपूरित करें। अच्छे पवित्र विचार रखें। ईश्वर का सदा स्मरण करें। यह जीवन है जो शरीर में रहता है, यह जीवन है जो भोजन की सहायता से शरीर का पालन करता है, यह जीवन है जो भोजन ग्रहण करता है, यह जीवन है जो बाहरी पदार्थों के निष्कासन हेतु रोग उत्पन्न करता है। इस प्रकार जीवन या जीवनी शक्ति ईश्वर से अपनी शक्ति प्राप्त करती है। इसलिए यदि आप ईश्वर के बारे में विचार करें और प्राणों को ईश्वर से जोड़ें, मन को ईश्वर से जोड़ें, तो आप इसे स्वस्थ और क्रियाशील बनाये रख सकते हैं। कभी-कभी मन में बुरे विचार आते हैं, जब कि आप बाहरी रूप से प्रकृति के अनुरूप जीवन यापन कर रहे होते हैं तब भी, इस समय यदि आपका मन अशुद्ध है तो आप एकदम से रोगों के चंगुल में फँस जाते हैं। इसलिए अपने मन को शुद्ध और स्वच्छ रखें।

रोग से भयभीत न हों। रोग छद्मवेश में हमारे ऊपर ईश्वर की कृपा है। रोग हमारे भीतर जीवन का संकेत है। रोग यह दर्शाता है कि शरीर में उपस्थित मल को बाहर निकालने हेतु हमारे भीतर पर्याप्त जीवनी शक्ति है। कुछ लोगों के परिचित और सम्बन्धित लोग जब टायफाइड, टी.बी., हैजा, छोटी माता आदि किसी संक्रामक रोग से पीड़ित होते हैं, तो उनके समीप जाने से डरते हैं। यह बहुत

गलत है। उनके मन में यह गलत धारणा है कि वे यदि रोगी के पास जायेंगे, तो वे रोग के चंगुल में आ जायेंगे और इस कारण वे रोगी की सेवा का स्वर्णिम अवसर खो देते हैं। यह एक महान् क्षति है।

रोग इस प्रकार नहीं होते। जब आपकी जीवनी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है, आपकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम हो जाती है या जब आपका संस्थान बाह्य पदार्थों से पूर्ण रहता है, केवल तभी आपको रोग होता है चाहे आप रोगी की सेवा करें या नहीं। यदि आप स्वस्थ हैं, यदि आप भीतर से स्वच्छ हैं और यदि आप अपने चारों ओर स्वच्छता रखें, तो आपको संक्रामक रोगों से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

संक्रमण से भय इस गलत धारणा के कारण होता है कि स्वस्थ व्यक्ति में रोगी से आने वाले जीवाणुओं के कारण रोग होता है; किन्तु ऐसा नहीं है। रोग आयातित जीवाणुओं के कारण नहीं होते। बहुत से मामलों में रोग के आक्रमण के समय संस्थान में कोई जीवाणु नहीं थे; परन्तु रोग होने पर जीवाणु उत्पन्न हो गये। यह इस बात को बताता है कि जीवाणु इस संस्थान की बाह्य पदार्थों की सफाई करने वाले प्राकृतिक कारक हैं। वे हमारे मित्र हैं। यदि वे आपके शरीर में उत्पन्न नहीं होते और यदि वे रोग से पीड़ित व्यक्ति से आये होते, तो आपके शरीर में मल न होने पर भी हानि पहुँचाते। यदि आपके शरीर में प्राकृतिक जीवन द्वारा स्वस्थ कोशिकाएँ उपस्थित हैं, तो आक्रामक जीवाणु भी स्वस्थ कोशिकाओं में परिवर्तित हो जायेंगे या वे बाहर फेंक दिये जायेंगे। इसलिए संक्रमण के भय को मन से निकाल फेंकें और अपने स्वास्थ्य में सुधार करके तथा मल के जमाव को रोक कर अपनी जीवनी शक्ति, अपनी स्वयं की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करें।

जब आप किसी ऐसे व्यक्ति की सेवा करना चाहें जो घातक संक्रामक रोग जैसे छोटी माता, कुष्ठ रोग या राजयक्ष्मा आदि से पीड़ित है, तो उसकी देखभाल खाली पेट करें, उस समय कोई भी भोज्य पदार्थ न लें (या भोजन ग्रहण करने के बाद कुछ घण्टे रुकें, पेट भी साफ होना चाहिए)। फिर रोगी की सेवा के लिए जायें। ऐसा करने से आपकी जीवनी शक्ति भोजन के अवशोषण, निष्कासन और पाचन के कार्य से मुक्त रहेगी तथा यह रोगी के शरीर से निकले किसी भी नुकसानदेह पदार्थ के आपके शरीर में प्रविष्ट होने से भी आपकी रक्षा करने हेतु क्रियाशील रहेगी। सेवा के बाद आप अच्छी तरह स्नान करें। अपने कपड़े भी धो लें और भोजन करने के पश्चात् विश्राम करें। यदि आपने रोगी की सेवा हेतु जाने के पूर्व भोजन कर लिया हो, तो फिर आप रोगी

की सेवा के लिए दूसरे दिन जायें। इस प्रकार रोगी की देखभाल के लिए परिचारिकाओं के दो समूह होने चाहिए- एक समूह प्रातःकालीन सेवाओं के लिए अर्थात् खाली पेट तथा दूसरा समूह सायंकालीन सेवा हेतु जब भोजन का पाचन हो जाये तब । इस तरह की व्यवस्था से रोगी की देखभाल करने वालों को कोई खतरा नहीं रहेगा।

छोटी माता जैसी व्याधि तो वास्तव में ईश्वर की सच्ची कृपा है। यह व्याधि वास्तव में विशेष रूप से वसन्त ऋतु में आन्तरिक संस्थान की सम्पूर्ण सफाई है। यहाँ तक कि छोटी माता के आक्रमण के समय संस्थान में अन्य जो भी बाह्य हानिकारक पदार्थ रहते हैं, यह उनकी भी सफाई कर देती है। ऐसा कहा जाता है कि सिफलिस जैसे रोग से भी छोटी माता के आक्रमण के बाद मुक्ति मिल जाती है। जब छोटी माता जैसे शक्तिशाली बाह्य पदार्थों को निकालने के लिए जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है और यह इसमें विजय प्राप्त कर लेती है, तो इस क्रियाविधि में छोटी-मोटी बीमारियाँ स्वयं ही दूर हो जाती हैं। इसीलिए जब कोई व्यक्ति छोटी माता से पीड़ित होता है, तो स्वस्थ होने के बाद वह बहुत ही आरोग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः आप जीवाणुओं के प्रति अपने मिथ्या भय तथा इस भय-ज्वर का त्याग कर दें। आप एक प्राकृतिक जीवन जियें और रोगों के विरुद्ध प्रमाण बनें तथा दीर्घायु प्राप्त करें।

यह शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है और ये पाँचों तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) हमारे वातावरण में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। हमें इस शरीर के साथ स्वास्थ्य तथा रोग-दोनों में ही व्यवहार करते समय सामान्य ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। पानी के भी बहुत सारे उपयोग हैं। प्राकृतिक उपचार में स्नान और पट्टियों के प्रयोग पर बहुत बल दिया जाता है। गीली पट्टी तो वास्तव में वरदान ही है। जब पेट के चारों ओर इसका प्रयोग किया जाता है, तो यह पेट के अंगों को शक्ति प्रदान करती है। यह पाचन और निष्कासन में सहायता करती है, यह पेट की मांसपेशियों को स्वस्थ करती है जिससे आमाशय की भित्ति अपना कार्य सुचारु रूप से कर पाती है। इससे रोग की तीव्रता बहुत कम हो जाती है। कई बार ऐसा देखा गया कि पेट के चारों ओर गीली पट्टी के प्रयोग से रोगी में हृदय की धड़कन रोग दूर हो गया।

पट्टी का सिद्धान्त यह है कि संस्थान में विखण्डन उपापचय की क्रिया (अर्थात् जब प्रकृति बाह्य पदार्थ को शरीर से बाहर निकालना चाहती है) चलती है, तो अतिरिक्त मात्रा में उष्णता उत्सर्जित होती है और यही अतिरिक्त गरमी गीली पट्टी जो लपेटी जाती है, अवशोषित कर लेती

है तथा इस प्रकार पट्टी बाह्य पदार्थ के संस्थान में बड़ी सहायता करती है। बाह्य पदार्थ गैस, तरल या अन्य रूप में अत्यन्त सरलतापूर्वक, शान्तिपूर्वक तथा शीघ्रता से बाहर निकल जाता है और आन्तरिक संस्थान की सामान्य क्रियाशीलता पुनः प्रारम्भ हो जाती है।

पट्टी कई प्रकार की होती है और इनके बहुत से प्रयोग हैं। यदि शरीर में आन्तरिक रूप से गरमी रहती है और यह शरीर के ऊपर अनुभव नहीं होती, तो प्रेरक गीली पट्टी का निर्देश दिया जाता है। इससे एक प्रकार की प्रतिक्रिया होगी, जिससे दोनों तरफ उष्णता समान रूप से वितरित हो जायेगी। सारे शरीर में रक्त का संचरण होने लगेगा और इस प्रकार यह परिसंचरण संस्थान में से बाह्य पदार्थ निकालने में सहायता करती है।

गीली पट्टी **: एक कपड़े का लम्बा टुकड़ा लें। इसे पानी में डुबा कर गीला कर लें। फिर कपड़े को दबा कर पानी निकाल दें। अब इसे लम्बाई में चारवर्ती मोड़ लें। इसे पेट के चारों ओर कस कर बाँध दें और पिन लगा दें।**

प्रेरक गीली पट्टी: इसकी विधि गीली पट्टी के समान ही है। इसमें अन्तर इतना ही है कि इसमें कपड़े को निचोड़ कर पूरा पानी निकाल दिया जाता है। इसमें कपड़े में अत्यन्त थोड़ा पानी शेष होना चाहिए। अब इसे लम्बाई में चारवर्ती लपेटें और पेट के चारों ओर लपेट दें। यह पट्टी गरमी को उत्तेजित करके सभी तरफ एक समान रूप से वितरित कर देती है।

गीली पट्टी का प्रयोग न्यूमोनिया में भी किया जा सकता है। इसके लिए पट्टी की चौड़ाई इतनी रखी जाती है कि वह सीने को ढाँक लें। गीली पट्टी सभी अंगों पर प्रयोग की जा सकती है। गीली पट्टी से गम्भीर सिरदर्द तुरन्त दूर हो जाता है।

स्नान : अगला शक्तिशाली माध्यम है स्नान। कटि-स्नान सच में एक वरदान ही है। पानी से भरे टब में बैठ जायें। पानी का स्तर आपके पेट तक होना चाहिए। सिर, धड़ और पैर पानी से बाहर और सूखे रखें। एक छोटे रूमाल की सहायता से पेट की मालिश भी कर सकते हैं।

इसके बाद आता है रीढ़ का स्नान। एक लम्बे टब में लेटें। टब में मात्र डेढ़ या दो इंच पानी होना चाहिए। पानी इतना हो, जिससे आपकी मात्र पीठ गीली हो सके। पानी का स्तर सीने और पीठ के मध्य होना चाहिए। यह तन्त्रिका तन्त्र हेतु सबसे अच्छा शक्तिवर्धक है। सभी नाड़ियों की

जड़ें रीढ़ की हड्डी में होती हैं और हम रीढ़ की हड्डी की देखभाल द्वारा वास्तव में अपने तन्त्रिका तन्त्र को नव-जीवन प्रदान करते हैं। यदि आपका तन्त्रिका तन्त्र स्वस्थ है, तो आपकी समस्त ग्रन्थियाँ अच्छी तरह काम करने लगती हैं और आपको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करती हैं।

उपर्युक्त स्नानों की अवधि तथा प्रयोग किये जा रहे पानी का तापमान रोगी की आयु, रोग-प्रतिरोधक क्षमता तथा लक्षणों की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि एक बार सामान्य नियमों को पकड़ लिया जाये, तो बाकी सब संकेत रोग-विशेष स्वयं ही दे देता है।

ऐसे विषयों में जिनमें रोगी ठण्डे पानी में खड़ा नहीं हो सकता और उसकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता अत्यन्त कम होने के कारण यदि वह शीतल जल में स्नान भी करे, तो उसकी जीवनी शक्ति अत्यन्त कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में गरम स्नान की सलाह दी जाती है।

एनीमा : प्राकृतिक चिकित्सा में संस्थान की सफाई हेतु विधियों में एनीमा महत्वपूर्ण है। एनीमा का प्रयोग बुद्धिमानीपूर्वक किया जाना चाहिए, ताकि यह आँतों की सामान्य क्रियाविधि को पुनः स्थापित कर सके। निम्न तीन नियमों के पालन द्वारा यह कार्य किया जा सकता है :

१. अधिक मात्रा में पानी का प्रयोग न करें। जहाँ तक सम्भव हो, पानी का प्रयोग बहुत कम मात्रा में करें।

२. एनीमा के बर्तन को गुदा-द्वार से तीन फीट से अधिक ऊँचा न रखें।

३. प्रयोग में लिये जाने वाले पानी में साबुन, ग्लिसरीन आदि उत्तेजक पदार्थ न मिलायें। सादा पानी लें। यदि आवश्यकता हो, तो आप कुछ सब्जियों के रस, छाछ या दूध मिला सकते हैं।

एनीमा के पानी का तापमान रोग की स्थिति तथा रोगी की जीवनी शक्ति आदि पर निर्भर करता है। यह स्नान की तरह ही ठण्डा या गुनगुना हो सकता है।

अन्त में प्राकृतिक जीवन द्वारा साधना हेतु आवश्यक पूर्ण सात्विक मन जो इन्द्रियों के नियन्त्रण हेतु आवश्यक है तथा ब्रह्मचर्य के पालन हेतु संवाहक है, प्राप्त किया जा सकता है तथा

इससे दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है और इन दोनों के द्वारा जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

२६. दीर्घायु की प्राप्ति

वह जिसे प्यास नहीं और पीता है,
या भूख नहीं और खाता है,
वह जो व्यायाम नहीं करता,
वह रोग से पीड़ित होता है और युवा ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

वह जो अत्यधिक वीर्यनाश करता है,
वह जो तम्बाकू खाता है,
वह जो रात में भारी भोजन ग्रहण करता है,कमी
वह रोग से पीड़ित होता है और युवा ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

वह जो छाछ पीता है,
वह जो टमाटर और नीबू खाता है,
वह जो तीन मील नित्य भ्रमण करता है,
वह स्वस्थ रहता है और दीर्घायु प्राप्त करता है।

वह जो हर बात में संयमित है,
वह जो धूप का आनन्द लेता है,
वह जो ठण्डे पानी से स्नान करता है,
वह स्वस्थ रहता है और दीर्घायु प्राप्त करता है।

वह जो सदा व्यस्त है,
वह जो कम बोलता है,
वह जो प्रातःकाल ठण्डा जल पीता है,
वह स्वस्थ रहता है और दीर्घायु प्राप्त करता है।

वह जो उपवास और ध्यान करता है,
वह जो जीने के लिए भोजन लेता है,
वह जो प्राकृतिक चिकित्सा लेता है,
वह स्वस्थ रहता है और अमरता प्राप्त करता है।

वह जो पालक लेता है,
वह जो थोड़ी भूख रहते ही भोजन करना बन्द कर देता है,
वह जो भोजन के समय मौन रखता है,
वह स्वस्थ रहता है और बहुत लम्बा जीवन प्राप्त करता है।

२७. जीवन-काल में वृद्धि करें

स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें,
आरोग्य के नियमों पर ध्यान दें,
उपचार से प्रतिबन्ध अधिक श्रेष्ठ है।
रोग को उसकी कलिकावस्था में ही नष्ट कर दें।

भोजन को अच्छी तरह चबायें,
सन्तुलित भोजन लें,
संयमित भोजन लें,
रात्रि में देर से भोजन न करें।

खुली हवा में दौड़ें,
दण्ड और कसरत करें।

शराब और नशीले पदार्थ न लें।
सादा जीवन उच्च विचार रखें।

रोग स्वास्थ्य का नाश करते हैं,
स्वास्थ्य दीर्घायु-प्राप्ति का साधन है,
शरीर को स्वस्थ और शक्तिशाली बनायें,
स्वयं अपने डाक्टर बनें।

शरीरं आद्यं खलु धर्म साधनम्।
रोग और उससे लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करें,
और कठिनाइयों तथा रोगों को दूर भगायें।

शान्तिप्रद और बहुत सुखी जीवन व्यतीत करें
चित्तशुद्धि-प्राप्ति के लिए तथा अनन्त सुख
और अमरता के लिए रोगियों की सेवा करें।

माह में एक बार उपवास करें,
रविवार को नमक त्याग दें,
आँतों को स्वच्छ रखें,
प्रकृति से सहायता लें।

रात को जल्दी सो जायें,
प्रातः शीघ्र जागें,
उत्साह से प्रार्थना करें,
नियमित ध्यान करें।

२८. रक्त दबाव के रोगियों के लिए दीर्घायु सम्भव है

क्या आप उन पाँच प्रौढ़ व्यक्तियों में से हैं जो रक्त दबाव अथवा धमनियों के कड़े होने से पीड़ित हैं। यदि आप उनमें से हैं, तो आपको बिस्तर में लेटे-लेटे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं

है। बहुत से लोग जो इनमें से एक या इन दोनों रोगों से पीड़ित हैं, वे यदि सावधानीपूर्वक रहें तो वे अपना जीवन उपयोगी बना सकते हैं।

चिकित्सकीय शोधों ने इन दोनों की स्थितियों के उपचार और देखभाल में आमूल-चूल परिवर्तन किया है। वे रोगी जो लगभग बीस वर्षों से बिस्तर में पड़े-पड़े अनुपयोगी जीवन बिता रहे थे, उन्हें अब सामान्य जीवन व्यतीत करने की सलाह दी जाती है। आजकल बुद्धिमान् चिकित्सक रोगी को ऐसी असामान्य दिनचर्या प्रस्तावित नहीं करते, जिसके पालन के लिए उसे घर से बाहर रहना पड़े। उच्च रक्तचाप के रोगी तथा उसके उपचार में अन्य रोगों की तुलना में अधिक बदलाव होता है। वास्तव में उच्च रक्त दबाव कोई रोग नहीं है; बल्कि यह इस बात का संकेत है कि कुछ-न-कुछ गलत अवश्य है, ठीक उसी प्रकार जैसे सिरदर्द और ज्वर सर्दी के साथ-साथ रहता है।

उच्च रक्त दाब से पीड़ित रोगी शल्य-चिकित्सा या औषधियों से भी ज्यादा वे स्वयं अपने लिए कर सकते हैं, फिर भी अपने पारिवारिक चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक है। 'आपका रक्त दबाव क्या है?' यह अच्छे और बुरे स्वास्थ्य के मध्य सीमारेखा की संवेदनशीलता हेतु व्यंग्य के स्थान पर गम्भीर चेतावनी है। सबसे अच्छा तो यह है कि आप संघर्ष और चिन्ता को दूर करें।

डाक्टर पेज ने कुछ सामान्य नियम बताये हैं, हालाँकि वे सभी पर लागू नहीं हो सकते। जैसे-सीढ़ियों पर चलें, दौड़ कर न जायें। बहुत थक जायें, इससे पहले काम रोक दें। दिन में दो बार विश्राम करें या झपकी लें-एक तो दोपहर के भोजन से आधा घण्टे पूर्व तथा दूसरी रात्रि-भोजन के एक घण्टे पहले। यदि सम्भव हो, तो बहस और चिन्ता कम-से-कम करें। एक घण्टे तक घर से बाहर हलके व्यायाम करें। बहुत से लोग सोचते हैं कि उच्च रक्त दबाव से महान् खतरा हो सकता है; पर विज्ञान इससे सहमत नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि रक्त दबाव का सामान्य से अधिक होना व्यक्ति पर निर्भर करता है। कोई भी व्यक्ति जो समय-समय पर अपने रक्त दबाव से अपने स्वास्थ्य का निर्धारण करता है, वह मात्र अपनी भावनात्मक ऊर्जा का ह्रास करता है और व्यर्थ ही अपने रक्त दबाव को बढ़ाता है।

डाक्टर पेज के अनुसार उच्च रक्त दबाव में खतरा यह है कि रक्त दबाव बने रहने से ऐसी स्थितियों की कड़ी स्थापित हो जाती है जो कि धमनियों की दीवालों के कठोर या मोटा होने का कारण होती हैं तथा अन्ततः इसके द्वारा कुछ रक्त वाहिनियाँ सम्भावित रूप से बन्द हो जाती हैं।

इस स्थिति को चिकित्सक लोग धमनी काठिन्य कहते हैं। यह ही उच्च रक्त दबाव के रोगियों की मृत्यु का मुख्य कारण है तथा यह गम्भीर हृदयाघात या गुर्दों की क्षति या उन्हें काम न करने के लिए प्रेरित करता है।

जैविक ऊतकों को रक्त की आपूर्ति न होना उतना ही गम्भीर है जैसे किसी पौधे को पानी न देना। किन्तु उच्च रक्त दबाव से पीड़ित सभी लोग धमनी काठिन्य से पीड़ित नहीं होते और जो होते हैं, उनमें कुछ अंशों की विकास की दर तथा तीव्रता की भिन्नता होती है। कुछ रोगी दशकों तक भी इससे प्रभावित नहीं होते।

नीचे की कुछ घटनाओं पर ध्यान दें -

एक व्यापारी ने अपने उच्च रक्त दबाव के कारण जीवन बीमा करवा लिया। ग्यारह वर्ष बाद भी उसका स्वास्थ्य एकदम अच्छा है। अब उसका रक्त दबाव भी कम हो गया है और उसके जीवन की आशा भी अन्य लोगों से अधिक प्रबल है। पचास वर्ष पूर्व एक किशोर वय लड़के को सत्रह वर्ष की आयु में ज्ञात हुआ कि उसका रक्त दबाव बढ़ा हुआ है और वह अपना सामान्य काम-धन्धा करता रहा और ६५ वर्ष की आयु तक काम करता रहा। आखिर में उसे कम्पनी ने रिटायर कर दिया। सत्तर वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हृदयाघात से हो गयी। उसके जीवन के ५३ वर्षों में यहाँ तक कि मृत्यु के एक माह पूर्व तक भी कोई लक्षण या सिरदर्द भी नहीं हुआ; लेकिन जब उसकी मृत्यु हुई, तब उसका रक्त दाब बहुत अधिक था।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में उच्च रक्त दबाव के स्तर तथा उसके विकास की दर में बहुत अधिक अन्तर होता है। दो बच्चों की माँ जिसकी आयु चौतीस वर्ष है, उसका स्वास्थ्य अच्छा था। लेकिन जब वह सो कर उठती, तो उसे सिरदर्द होता था जिससे वह चिन्तित रहती थी। उसके चिकित्सक ने परीक्षण किया और पाया उसका रक्त दबाव बहुत अधिक था। उसने उसे सिरदर्द की दवाई दी और वजन कम करने के लिए कहा। उस स्त्री ने पेस्ट्री तथा अन्य वस्तुएँ त्याग दर्दी और अपने पति को शपथ दिला दी कि वह उससे इन चीजों के लिए आग्रह न करे।

पन्दरह वर्षों पश्चात् जब उस पर इन्फ्लूएंजा का आक्रमण हुआ, उसका परीक्षण करने पर यह पाया गया कि उसके हृदय का आकार थोड़ा बढ़ गया था। उसका रक्त दबाव सामान्य से

अधिक था; पर उसका स्वास्थ्य अच्छा था। जब तक वह ५६ वर्ष की नहीं हो गयी, तब तक रक्त दबाव ने उसे कष्ट नहीं दिया। एक दिन सुबह उठने पर वह चल नहीं पा रही थी। उसके चेहरे का दायाँ भाग लटक गया था और वह अपने दायें हाथ तथा पैर को हिला नहीं सकती थी। उपचार के द्वारा उस अपघात से उबरने के बाद आखिरी समय जब चिकित्सक ने उसे देखा, वह सामान्य जीवन जी रही थी।

एक ४५ वर्षीय वकील की स्थिति अलग थी जो यह सोचता था कि वह स्वस्थ है; किन्तु उसे गहरा धक्का लगा, जब उसे यह मालूम हुआ कि उसका अगले जीवन बीमा हेतु भेजा गया आवेदन पत्र उच्च रक्त दाब के कारण अस्वीकृत हो गया है। उसके स्वयं के चिकित्सक ने पाया कि स्थिति गम्भीर है। इस कारण उसने सहानुभूति से उसे आपरेशन करवाने की सलाह दी। किन्तु रोगी ने यह कह कर मना कर दिया कि उसे अस्पताल में एक सप्ताह बिताना कठिन है, इसलिए वह अपने आहार में परिवर्तन कर लेगा। छह माह बाद उसे गम्भीर असहनीय सिरदर्द, सीढ़ियों पर चढ़ते समय साँस लेने में कष्ट, टखनों में सूजन और सीने में सख्तपन का अनुभव होने लगा। इस समय उसने अपने चिकित्सक को अस्पताल ले जाने की आज्ञा दे दी; किन्तु ध्यान रखने तथा आहार में नमक कम करने के बाद भी वह एक माह में मर गया।

एक ईमानदार चिकित्सक नहीं कह सकता कि रोगी जैसा पहले था वैसा ही रहेगा। किन्तु उच्च रक्त दाब के मामले में जैसा कि अन्य रोगों में होता है यदि व्यक्ति की नियमित जाँच की जाये तथा बुद्धिमानीपूर्वक उसकी देखभाल की जाये, तो वह अच्छी तरह क्रियाशील रह कर अधिक समय तक जीवित रह सकता है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि उच्च रक्त दाब से पीड़ित अधिकांश लोग उचित देखभाल के द्वारा बिना किसी कष्ट के बहुत वर्षों तक जीवित रहे हैं।

२१. शतायु बनने का एक निश्चित उपाय

आजकल जीवन बहुत जटिल हो गया है। लोग सुविधाभोगी हो गये है। उनका इन्द्रियों पर कोई नियन्त्रण नहीं है। उनकी आदतें अनियमित हैं।

भोजन की समस्या स्वयं ही जटिल और थका देने वाली है और इसी कारण उन्हें अपनी संस्कृति तथा ईश्वर और आत्मा के बारे में सोचने का समय ही नहीं मिलता। किन्तु सच्चे साधक अपनी साधना हेतु समय और स्थान प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ शतायु बनने की एक छोटी और निश्चित विधि दी जा रही है। कृपा करके उसे उत्साह तथा लगन के साथ करें। आपको पछताने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप मात्र इसी पर दृढ़तापूर्वक लगे रहें, तो भुक्ति और मुक्ति आपकी होंगी।

शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन और पश्चिमोत्तानासन, सूर्य- नमस्कार तथा प्राणायाम का नियमित और व्यवस्थित अभ्यास आपको स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करेगा। ध्यान आपको स्वास्थ्य और दीर्घायु के आन्तरिक स्रोत के सम्पर्क में लायेगा।

ईश्वर के नाम का जप एक पुष्टिकर शक्तिवर्धक है जो आपको सौ तथा उससे अधिक वर्ष जीने योग्य बनायेगा। अन्तिम श्वास तक मानव मात्र की निष्काम सेवा तीव्र उमंग के साथ करने से बढ़ कर शक्तिशाली कोई शक्तिवर्धक नहीं है। इससे आपके ऊपर शीघ्र ही ईश्वर की कृपा होगी, जिसका अर्थ है-स्वास्थ्य और दीर्घायु ।

गलत विचारों को त्याग दें। शारीरिक और बौद्धिक ऊर्जा का संरक्षण और संग्रह करें। नपे-तुले शब्द बोलें। आप जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो, महामृत्युंजय मन्त्र का जप करें। आपके जीवन में कभी दुर्घटनाएँ नहीं होंगी। शहरों में आपका कई दुर्घटनाओं से सामना होता है। इस जप से आपकी कभी अकाल-मृत्यु नहीं होगी।

यदि आपने भूतकाल में गलतियाँ भी की हैं, तो भी भविष्य में स्वयं में सुधार लायें। क्रोध, वासना, लोभ और द्वेष को नियन्त्रित करें। उपनिषद् कहती है कि मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मानव मात्र की सेवा तथा मानव-जीवन के लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार की प्राप्ति हेतु सौ या उससे भी अधिक वर्ष जीवित रहे।

ईश्वर आपको मानव मात्र की सेवा हेतु दीर्घायु बनायें और आप इसी जीवन में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करें!

३०. सौ वर्षों का स्वस्थ जीवन

ॐ जीवेम शरदः शतम् (यजुर्वेदः)

वेदों से निकलने वाली यह वाणी मनुष्य की अपनी पूर्ण विकसित इन्द्रियों तथा अंगों और उत्तम स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक आकांक्षा से पूर्ण आदर्श जीवन बिताने तथा परम चेतना स्थिति प्राप्त करने की इच्छा का संकेत करती है।

इस कलियुग में भी ऐसी कई महान् आत्माएँ हैं जो आत्मा के अनन्त जीवन की खोज में हैं तथा जिन्होंने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा वेदों में घोषित शतवर्षीय जीवन को प्राप्त किया है तथा वे मानव मात्र की सेवा में लगे हुए हैं। ये महान् आत्माएँ यम और नियम में दृढ़ हैं और जिनकी आयु का अनुमान लगाना कठिन है।

वर्तमान काल में जो सांसारिक जीवन में लिप्त हैं, उनकी आयु मात्र ६५ वर्ष होती है। इसका कारण यह है कि भारत एक गरम देश है तथा साथ ही यहाँ पोषक तत्वों की भी कमी है। गृहस्थ जीवन बिताने वालों में मुश्किल से ही कोई सौ वर्ष की आयु वाला मिलता है। यदि कोई मिल भी जाये, तो वह शरीर और मन से दुर्बल रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि वे शास्त्रों में बताये गये संयम और नियम के सिद्धान्तों का पालन नहीं करते।

वे ज्ञानी आत्माएँ जो भगवान् धन्वन्तरि के आयुर्वेद शास्त्र के अनुरूप आचरण करती हैं, जो स्वयं को यम-नियम के पालन द्वारा स्वस्थ रखते हैं तथा जिन्होंने अपनी बौद्धिक तथा मानसिक ऊर्जा को पवित्र विचारों द्वारा केन्द्रित किया है, वे मनुष्यों में आदर्श हैं तथा वे एक स्वस्थ और वैदिक जीवन का आनन्द उठाते हैं। भगवान् धन्वन्तरि का आयुर्वेद मनुष्य को एक यशस्वी तथा स्वस्थ शतवर्षीय जीवन हेतु प्रेरित करता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ।।

(चरकसूत्रम्)

"ज्ञानी पुरुष को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पोषण हेतु सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि रोग शरीर का नाश करके जीवन में जो श्रेष्ठ है, उसका हरण कर लेते हैं।" (चरकसूत्र : १६)

दीर्घायु के लिए दैनिक दिनचर्या

सभी को दीर्घायु-प्राप्ति तथा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रातः चार बजे उठ कर प्रार्थना और ध्यान करने चाहिए। इससे मानसिक तथा आध्यात्मिक शुद्धता का विकास होता है तथा सत्त्व के द्वारा इन्द्रियाँ भी रोग-मुक्त हो जाती हैं।

ब्राह्ममुहूर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।

शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ।।

(अ. हृ.)

प्रत्येक को ब्राह्ममुहूर्त में प्रातः ४ बजे उठ जाना चाहिए। उसके बाद मन से सभी चिन्ताएँ दूर कर एक घण्टे ध्यान करना चाहिए। उसके बाद अपने शरीर की शुद्धि हेतु आवश्यक क्रियाएँ करनी चाहिए।

उषा पान (प्रातःकाल जल पीना)

ध्यान करने के बाद नीचे बतायी विधि के अनुसार पानी पियें। सोते समय रात में अपने बिस्तर के पास एक ताँबे के पात्र में जल भर कर रख लें। इसको ढक्कन से भली-भाँति ढाँक कर रखें। प्रातः ४ बजे ध्यान करें, उसके बाद ५ बजे यह जल पी लें। यह कब्ज तथा कई अन्य रोगों को दूर करता है तथा नेत्र-ज्योति में वृद्धि करता है और स्मरण शक्ति में भी वृद्धि करता है।

शुद्ध वायु में भ्रमण

उषा पान के पश्चात् प्रातःकाल शीतल, सुगन्धित और शुद्ध वायु में उस मार्ग पर भ्रमण हेतु जायें, जिसके दोनों ओर हरे-भरे वृक्ष लगे हुए हों। कम-से-कम १ या २ दो मील अवश्य घूमें। फिर किसी अच्छे स्थान पर पद्मासन में बैठ कर १५ मिनट प्राणायाम करें। शुद्ध वायु में प्राणायाम करने से फेफड़ों में शीतल ताजी वायु भरती है और यह रक्त को शुद्ध करती है और हृदय को शक्ति प्रदान करती है। भ्रमण से वापस आने पर आप शौच हेतु जायें और बीस मिनट विश्राम करें। इस समय आप अपने दाँतों को नीम या बबूल की दातुन अथवा किसी अच्छे दन्तमंजन से साफ करें।

आसन और व्यायाम

आसन और व्यायाम हमारे शरीर को स्वस्थ रखने हेतु आवश्यक हैं। विभिन्न आसनों में से पश्चिमोत्तानासन, हलासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, मयूरासन आदि जीवनी शक्ति तथा स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक वृद्धि करते हैं।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ।।
(वाग्भट सूत्र)

जो रोग चिकित्सकों द्वारा असाध्य घोषित कर दिये गये थे, वे आसन और प्राणायाम के अभ्यास से सफलतापूर्वक दूर हो गये हैं, ऐसे कई उदाहरण हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आसन और प्राणायाम स्वस्थ तथा दीर्घायु हेतु अमूल्य सहयोग प्रदान करते हैं।

व्यायाम के अभ्यास से वृद्धावस्था दूर चली जाती है तथा बुद्धि, दीर्घायु, शक्ति और ओजस्विता में वृद्धि होती है। इसके अभ्यासी पर रोग का अचानक आक्रमण नहीं होता। व्यक्ति को शारीरिक व्यायामों का अभ्यास शान्त और स्थिर मन से करना चाहिए तथा जब पसीना आने लग जाये, अभ्यास को रोक देना चाहिए। व्यायाम के पश्चात् शरीर को विश्राम दें और तेल से मालिश करें। तेल मालिश स्वास्थ्य प्रदान करती है। ग्रीष्म ऋतु को छोड़ कर अन्य ऋतुओं में मालिश करने से बहुत अधिक लाभ होता है। इसके बाद नहर या नदी के ताजे बहते जल से अथवा शुद्ध जल से स्नान करें। ऐसा स्नान स्वास्थ्य में वृद्धि करता है और त्वचा रोगों का नाश करता है। शास्त्रों में बताया गया है कि पवित्र नदियों में स्नान करने से मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि

होती है। जब कोई रोगी हो अथवा उसका स्वास्थ्य सामान्य रूप से अच्छा न हो, तो वह गरम पानी से भी स्नान कर सकता है। लेकिन कभी भी सिर पर गरम पानी न डालें। इससे सिर की नाड़ियाँ कमजोर होती हैं और इसके फलस्वरूप उसे सर्दी-खाँसी हो जाती है और सिर के बाल सफेद हो जाते हैं। स्नान करते समय शरीर की अच्छी तरह से मालिश करनी चाहिए। इस तरह शरीर के रोम छिद्रों में से धूल-गन्दगी साफ हो जायेगी और व्यक्ति अच्छे स्वास्थ्य का उपभोग करेगा।

स्नान करने के बाद नित्य प्रार्थना, स्तोत्र आदि पढ़ना, शास्त्रों का स्वाध्याय तथा अन्य धार्मिक कृत्य कम-से-कम बीस मिनट तक अवश्य करें। शारीरिक स्नान से हमें बाहरी शुद्धता प्राप्त होती है और ये हमें आन्तरिक मानसिक शुद्धता प्रदान करते हैं। अपने भीतर और बाहर की पवित्रता का अभ्यास हमारे स्वास्थ्य और आदर्श जीवन हेतु अत्यन्त लाभप्रद है। प्रातः कालीन ध्यान के पश्चात् व्यक्ति को हलके भोज्य पदार्थ जैसे दूध, फल, शुष्क फल, छाछ आदि लेने चाहिए। आयुर्वेदिक विधि द्वारा निर्मित शक्तिवर्धक जैसे च्यवनप्राश, अमृतप्राश, बादामपाक, मूसलीपाक आदि भी लिये जा सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि महर्षि च्यवन ने च्यवनप्राश के प्रयोग से अपना यौवन पुनः प्राप्त किया। इसके प्रयोग से उनकी वृद्धावस्था तेजस्वी युवावस्था में परिणित हो गयी। देवों के आदरणीय वैद्य अश्विनीकुमारों ने इस आश्चर्यजनक शक्तिवर्धक औषधि से महर्षि च्यवन को परिचित कराया। ये सभी शक्तिवर्धक दीर्घायु-प्राप्ति हेतु अत्यन्त लाभप्रद हैं।

दैनिक कर्तव्य : जीविकोपार्जन के साधनों के अनुसार मनुष्य को अपनी बौद्धिक और शारीरिक क्षमता के अनुरूप स्वयं को नित्य किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रखना चाहिए; क्योंकि परिश्रम करने से ही उसका शरीर तथा इससे जुड़ी इन्द्रियाँ शक्ति प्राप्त करती हैं। रक्त का संचरण बढ़ जाता है। मनुष्य की भूख और पाचन शक्ति में वृद्धि होती है। शरीर निरोग हो जाता है। शरीर और मन के उत्तम स्वास्थ्य हेतु परिश्रम करना अनिवार्य है। बिना श्रम के शरीर रोगी हो कर शीघ्र नष्ट हो जायेगा।

आहार : जीवन को बनाये रखने के लिए प्रत्येक प्राणी को भोजन लेना ही पड़ता है। अच्छा पौष्टिक भोजन ही शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। भोजन से प्राप्त शक्ति द्वारा ही जीव में चेतना प्रकट होती है। यहाँ तक कि मन के द्वारा बुद्धि और कारण जो कार्य करते हैं, वे भी

भोजन के सूक्ष्म बल से ही कार्य करते हैं। जो मनुष्य सौ वर्ष जीना चाहता है, उसे अपने भोजन में नियमानुसार परिवर्तन लाना चाहिए। महर्षि चरक कहते हैं :

तत्त्वनित्यं प्रयुंजीत स्वास्थ्य येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरंच यत्।।

(चरकसूत्रम्)

अच्छे स्वास्थ्य हेतु भोजन के वे पदार्थ लेने चाहिए जो स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं डालते, रोग नहीं उत्पन्न करते, ये सभी उत्तम स्वास्थ्य हेतु सहायक हैं और ये हमारे लिए स्वास्थ्यकर हैं।

गीता में भी लिखा है : "वह भोजन जो आयु, शुद्धता, शक्ति, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सन्तुष्टि में वृद्धि करे तथा जो स्निग्ध, विशिष्ट और आनन्दकर हो, वह सात्त्विक है" (गीता : १७/८)।

अच्छे स्वास्थ्य हेतु सन्तुलित भोजन के महत्त्व से सभी सहमत हैं। महर्षि चरक ने अशुद्ध भोजन तथा भोजन में अति को स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त हानिकारक बताया है। भोजन सम्बन्धी नियमों का ज्ञान न होना तथा उनके उल्लंघन के कारण बहुत से लोगों में कई रोग हो जाते हैं। स्वास्थ्य का भोजन के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। अत्यधिक मात्रा में भोजन लेने से मनुष्य के स्वास्थ्य में वृद्धि होने के स्थान पर हानि ही होती है। इससे भूख में कमी होती है तथा पाचन शक्ति में भी कमी होती है और इसी कारण मनुष्य असाध्य रोगों का शिकार हो जाता है। अति भोजन अर्थात् असन्तुलित भोजन पेट दर्द, कब्ज, भूख न लगना, यकृत रोग, आन्त्रपुच्छ की सूजन (एपेंडीसाइटिस), मूत्र विकार, हृदय रोग आदि को जन्म देता है। जिन पदार्थों से शरीर में वसा की वृद्धि हो, उन्हें कम मात्रा में लेना चाहिए; क्योंकि शरीर में वसा की मात्रा बढ़ने से मोटापा हो जाता है, चलते समय श्वास अनियमित हो जाती है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है और जल्दी-जल्दी मूत्र विसर्जन हेतु जाना पड़ता है, इसलिए व्यक्ति को निम्न पदार्थों में संयम रखना चाहिए-काजू, बादाम, अखरोट, दही, पनीर, मक्खन, आलू, उड़द, चावल, तेल, वनस्पति घी, घी तथा इससे बने पदार्थ। आजकल युवाओं में देखा जा रहा है कि उनका भोजन पोषक पदार्थों से पूर्ण होने के बाद भी उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण है-आत्म-संयम में कमी, अनियन्त्रित इन्द्रियाँ, कामुक प्रवृत्ति, अश्लील फिल्मों आदि में लिप्त रहना, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, मांसाहार, चाय, अफीम, गाँजा, भाँग तथा अन्य नशीले पदार्थों का व्यसन तथा वेश्याओं आदि की संगत में रह कर वीर्य शक्ति का

अत्यधिक नाश करना। अपनी इन्द्रियों की इन कुत्सित कर्मों से रक्षा करना अनिवार्य है और व्यक्ति का सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य हेतु पूर्ण समर्पण होना चाहिए। इन तीन नियमों के मात्र पालन द्वारा ही मनुष्य सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकता है।

भोजन करने की विधि : सदैव एकान्त में भोजन करें। भोजन के समय मन को एकाग्र करके पूर्ण मौन रखें। भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व भगवान् से प्रार्थना करें और पाँच ग्रास अग्नि में डालें। यदि आपके घर में कोई अतिथि हों, तो सर्वप्रथम उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन करायें और उसके बाद स्वयं भोजन ग्रहण करें। भोजन सदा शुद्ध पात्र में रखें। जो कुछ भी आप खायें, उसे भली प्रकार चबायें। भोजन में से सर्वप्रथम मीठे पदार्थ ग्रहण करें, उसके बाद नमकीन, फिर अन्य पदार्थ लें। जल भोजन के मध्य में अथवा अन्त में पियें। जल जल्दी-जल्दी और बार-बार न लें; क्योंकि यह अपच और गैस उत्पन्न करता है। भोजन के मध्य गरम जल का सेवन अच्छा है। यह गैस को दूर करता है। भोजन के पश्चात् मुँह धोयें और दाँतों को अच्छी तरह साफ करें। दाँतों के मध्य कोई भी भोज्य पदार्थ चिपका न रहने दें; क्योंकि ये ही कीटाणुओं का वास-स्थान है तथा ये ही दाँतों में गड्ढे और कई सारे दाँतों के रोगों को जन्म देते हैं। मुँह को अच्छी तरह से साफ करने के बाद आपको अदरक के चार टुकड़े थोड़ा सेंधा नमक डाल कर खाने चाहिए। इससे आपका भोजन सरलता से पच जायेगा। पान की पत्ती में अच्छी तरह नीबू का रस मिला कर खाना भी अत्यन्त लाभप्रद है। प्रति पक्ष अर्थात् पन्दरह दिन में एक दिन उपवास रखें। आप एकादशी, अमावास्या अथवा पूर्णिमा के दिन भी उपवास रख सकते हैं। यह धार्मिक दृष्टि से भी लाभदायक है। जो अत्यधिक बौद्धिक श्रम (मानसिक श्रम) करते हों, उन्हें गेहूँ, दूध, मक्खन, शहद, बादाम, काजू, टमाटर का रस, सेब फल, अंगूर, अनार, सन्तरा, पालक, लौकी, करेला, परवल आदि पौष्टिक पदार्थ अपने आहार में लेने चाहिए। ताजी सब्जियाँ और फल प्रचुर मात्रा में लेने चाहिए। बकरी का दूध भी स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। शारीरिक श्रम करने वाले लोगों के लिए गेहूँ, चना, चावल, अरहर, मूँग, उड़द, घी, दही, आलू, पत्तागोभी, मूँगफली, तिल का तेल आदि शरीर-निर्माण हेतु उत्तम है। शाकाहारियों के भीतर मांसाहारियों की तुलना में अधिक शक्ति होती है तथा उनका बौद्धिक विकास भी अधिक होता है। मांसाहारी लोग विभिन्न रोगों-जैसे हृदय रोग, मानसिक रोग, रक्त दबाव, हृदय की धड़कन, अस्थमा आदि से पीड़ित रहते हैं। शाकाहार के द्वारा व्यक्ति सदा स्वस्थ रह सकता है और सतत्त्व या शुद्धता का विकास कर सकता है।

ऋतुओं के अनुसार आहार

ग्रीष्म ऋतु में आहारः इस ऋतु में शारीरिक और मानसिक शक्ति के लिए प्रातः और सायंकाल शीघ्र भोजन कर लेना चाहिए। इस ऋतु में भूख अधिक नहीं लगती, शरीर गरमी के कारण थका हुआ रहता है। इसलिए भोजन हलका, शीघ्र पचने योग्य तथा अपनी पाचन शक्ति के अनुरूप होना चाहिए। चावल, मूँग, मसूर, अरहर, छाछ, लस्सी, दूध, शहद, नीबू, टमाटर, फल, हरी सब्जियाँ, गन्ने का रस, ककड़ी, मौसमी, अनार, सन्तरा, पुदीना, हरा धनिया, परवल, लौकी आदि-ये सभी अत्यन्त लाभप्रद हैं।

ग्रीष्म ऋतु में दिन बहुत लम्बा होता है; इसलिए दिन में सोना स्वास्थ्य हेतु अच्छा है।

ग्रीष्म ऋतु के लिए ब्राह्मी रसायन सबसे अच्छा शक्तिवर्धक है। प्रतिदिन इसे १-१ तोला मात्रा प्रातः-सायं लें और इसके बाद पाव-भर गाय का दूध पियें। दिन के समय ब्राह्मी शर्बत लें। यह शरीर को ठण्ढा रखता है और प्यास बुझाता है।

ग्रीष्म ऋतु में क्या न करें : इस ऋतु में अत्यधिक खट्टा या गरम भोजन, बासी भोजन, अधिक व्यायाम, रात्रि में भ्रमण, मांस और मद्य तथा अत्यधिक कामोपभोग में लिप्त रहना वर्जित है।

वर्षा ऋतु में आहार : इस ऋतु में बादलों के छाये रहने के कारण जठराग्नि क्षीण रहती है। इस समय शरीर में वायु की (वायु-तत्त्व की) अधिकता होने के कारण शरीर को कम भोजन की आवश्यकता रहती है। इस कारण इस मौसम में हलका और जल्दी पचने वाला भोजन लेना चाहिए; गेहूँ, दलिया, गेहूँ की पतली रोटी, मूँग की दाल की खिचड़ी, घी, शहद, अम्लीय फल, अदरक, प्याज, हरी मिर्च, हींग, लौंग, करेला, परवल, भिण्डी, नीबू (कागजी), आम, सेब फल, अंगूर आदि लेने चाहिए।

वर्षा ऋतु में भोजन के बाद दो चम्मच (चाय के) द्राक्षासव लेना चाहिए। यह शरीर का पोषण करता है और बहुत से रोगों को दूर करता है। सुबह-शाम दूध में १ चाय का चम्मच त्रिकुट चूर्ण मिला कर लेना चाहिए। यह दूषित गैसों को दूर करता और जठराग्नि बढ़ाता है।

वर्षा ऋतु में पथ्य : वर्षा ऋतु में दही, बासी भोजन या रात-भर रखा हुआ भोजन, वह भोजन जो वायु उत्पन्न करे, नदी का जल, दिन में धूप में घूमना, रति कर्म, रात देर तक जागना- ये सब निषिद्ध हैं।

शीत ऋतु में आहार : शीत ऋतु में जठराग्नि बहुत प्रबल रहती है; इसलिए भोजन विशेष रूप से पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिए। इस ऋतु में चावल, गेहूँ, अरहर, जौ, पापड़, पत्ता गोभी, लौकी, करेला, टमाटर, फलों का रस, नारियल, सेब फल, नाशपाती, दूध से निर्मित पदार्थ आदि विशेष रूप से लाभकारी हैं।

शीत ऋतु में शक्तिवर्धक : इस ऋतु में अष्टवर्ग युक्त च्यवनप्राश ४० दिन तक १-१ चम्मच सुबह-शाम लेना चाहिए और इसके बाद पाव-भर दूध लें। यह बौद्धिक शक्ति तथा ब्रह्मचर्य हेतु संवाहक है।

शीत ऋतु में पथ्य : बासी दही, बैंगन और गैस उत्पन्न करने वाली सब्जियाँ-ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

अच्छे स्वास्थ्य हेतु रात्रि का भोजन : रात का भोजन हलका,
सरलता से पचने वाला तथा अधिक तरल होना चाहिए। भोजन के बाद थोड़ा दूध पियें। यह भोजन को शीघ्र पचाता है और इससे कब्ज भी दूर हो जाता है। रात्रि में सोने से करीब तीन घण्टे पहले भोजन कर लेना चाहिए। भोजन करके तुरन्त सो जाने से स्वप्नदोष होने लगता है तथा नींद में विघ्न पड़ता है। सोने के पहले भगवान् की प्रार्थना और स्मरण करना चाहिए।

दीर्घायु-प्राप्ति हेतु कल्पः प्राचीन काल से ही हमारे देश में कल्प का प्रयोग रोगों को दूर करने तथा दीर्घायु और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु किया जाता रहा है। दुग्ध कल्प, तक्र कल्प, नीम कल्प, मधु कल्प, आम्र कल्प, त्रिफला कल्प आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कल्प हैं। ग्रीष्म ऋतु में तक्र कल्प या नीम कल्प, वर्षा ऋतु में त्रिफला या आम्र कल्प तथा शीत ऋतु में दुग्ध कल्प या मधु कल्प किया जा सकता है। उत्तम स्वास्थ्य के लिए यह व्यवस्था अत्यन्त लाभप्रद है। ये कल्प दीर्घायु-प्राप्ति हेतु किये जाते हैं। कुछ कल्पों का विस्तृत विवरण इसी पुस्तक में पहले किया जा चुका है और अधिक विवरण जानने हेतु मेरी पुस्तक 'Practice of Ayurveda' पढ़ें।

जो सौ वर्ष जीने की आकांक्षा रखते हों, उन्हें ऊपर बतायी गयी कल्प साधना का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। कल्प साधना के सफल अभ्यास हेतु एक शान्त और स्वास्थ्यप्रद वातावरण का चुनाव करना चाहिए। जो कल्प साधना के अभ्यास के साथ यम और नियम का पालन भी करते हैं, वे अच्छा स्वास्थ्य ही नहीं प्राप्त करते वरन् शक्ति, वीर्य तथा यौवन भी प्राप्त करते हैं।

कल्प साधना का स्थायी प्रभाव : कल्प साधना शरीर पर स्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है। इस साधना में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ जैसे शुद्ध गाय का दूध, शहद, छाछ आदि की सूक्ष्म ऊर्जा कल्प के अभ्यासी की सप्त धातुओं, रक्त, मांस आदि में प्रविष्ट हो कर एक आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करती है जो कि कुछ वर्षों तक स्थायी रहता है। इसी ऊर्जा के कारण राजयक्ष्मा, कुष्ठ, अस्थमा, कैंसर, लकवा आदि जैसे भयंकर रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। प्राचीन काल में हमारे ऋषियों और देवों ने इस कल्प साधना के द्वारा अपने जीवन में हजारों वर्षों की वृद्धि करके तपस्या और आध्यात्मिक साधना द्वारा अमरत्व को प्राप्त किया। आज भी कल्प ही महिमा दृष्टि से ओझल नहीं हुई है, आवश्यकता है मात्र यम और नियम के पालन के साथ अभ्यास करने की।

लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु !

समस्त जन सुखी हों !

३१. योग के द्वारा उज्ज्वल स्वास्थ्य की प्राप्ति

स्वास्थ्य ही धन है। अच्छा स्वास्थ्य आपके लिए महानतम सम्पत्ति है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना आप जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। यहाँ तक कि आध्यात्मिक साधना हेतु भी अच्छा स्वास्थ्य प्रथम योग्यता है। उत्तम स्वास्थ्य के बिना आप इस जीवन के बृहत् सागर, जो आपके भीतर स्थित है, की रहस्यमय गहराइयों में प्रवेश नहीं कर सकेंगे तथा अपने जीवन के परमानन्द को नहीं पा सकेंगे। यदि आपका स्वास्थ्य उत्तम नहीं होगा, तो आप अपनी उपद्रवी इन्द्रियों तथा प्रबल मन के साथ संघर्ष नहीं कर सकेंगे। सरकारी

हठयोग उत्तम स्वास्थ्य हेतु ईश्वर का वरदान है। हठयोग के अभ्यास से शरीर और मन-ये दोनों साधन शक्तिशाली, स्वस्थ और ऊर्जा से परिपूर्ण रहते हैं। यह भौतिक जगत् तथा आध्यात्मिक जगत्-दोनों के विरोधी बलों के संघर्ष में रक्षा हेतु अनूठा अस्त्र है। इसके अभ्यास द्वारा आप आधि-व्याधि को दूर करके भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

हठयोग हमारी भारतीय संस्कृति की एक पूर्ण अभ्यासिक व्यवस्था है। योगाभ्यास द्वारा आप शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सन्तुलित विकास कर सकते हैं। यह एक तथ्यपरक विज्ञान है। हठयोग प्राचीन भारत के ऋषियों और योगियों के यौगिक आसनों के साथ व्यवहृत है तथा यह विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। यहाँ कोई भी अस्पष्ट सिद्धान्त नहीं है। ये प्रत्येक अभ्यासी को निश्चित प्रायोगिक ज्ञान, अच्छा स्वास्थ्य, दीर्घायु, शक्ति, स्फूर्ति और जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं। ये आपको नैतिक पूर्णता, मन के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण तथा विभिन्न अदृश्य आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त करने में सहायता करते हैं। आप योगाभ्यास द्वारा सम्पूर्ण प्रकृति पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं। योग निराशों को आशा, दुःखी जनों को प्रसन्नता, निर्बलों को बल तथा अज्ञानी को ज्ञान प्रदान करता है। योग वह रहस्यमय कुंजी है जो परमानन्द और बहुप्रतीक्षित गहन शान्ति के राज्य के द्वार को खोलती है।

हठयोग के अंग : हठयोग कुण्डलिनी शक्ति के जागरण तथा समाधि में ईश्वर के साथ अन्तिम संयोग हेतु प्रेरित करता है। षट् क्रियाएँ, आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ, बन्ध और एकाग्रता तथा ध्यान के अभ्यास इसके संघटक हैं। षट् क्रियाएँ प्रारम्भिक शुद्धिकरण की क्रियाएँ हैं। आसन इस भौतिक शरीर तथा नाड़ी केन्द्रों से सम्बन्ध रखते हैं। ये शरीर को सुदृढ़ और स्थायी रखते हैं तथा शरीर की व्याधियों और जड़ता को दूर करते हैं। प्राणायाम का लक्ष्य प्राणवायु पर नियन्त्रण है। बन्ध प्राण से सम्बन्ध रखते हैं। जो प्राण को बाँधे, वह बन्ध है। ये प्राण को ऊपर नहीं जाने देते और अपान को नीचे नहीं जाने देते। बन्ध प्राण और अपान को संयुक्त करके इन्हें सुषुम्ना नाड़ी के साथ भेजते हैं। मुद्राएँ मन के साथ सम्बन्ध रखती हैं। ये बन्द करने का काम करती हैं। मुद्रा का अर्थ है बन्द। ये मन को आत्मा के साथ बन्द करती हैं। ये मन को विषय वस्तुओं की ओर दौड़ने नहीं देतीं। ये बाहर घूमते मन को हृदय-गुहा में आत्मा की ओर भेजती हैं और वहाँ केन्द्रित करती हैं। इन सबका संयुक्त अभ्यास आवश्यक है।

नीचे कुछ मुख्य आसनों, प्राणायामों और मुद्रा के बारे में बताया जा रहा है।

सभी आसनों में शीर्षासन और सर्वांगासन अनिवार्य और मुख्य हैं।

शीर्षासन : भूमि पर चार परतों में मोड़ कर कम्बल को बिछा लें। घुटनों के बल बैठ जायें। दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फँसा लें और कम्बल पर रखें। अपने सिर का शीर्ष भाग हाथों के मध्य कम्बल पर रखें। उँगलियों को फँसा लें। अब शरीर को धीरे-धीरे ऊपर उठायें और पैर ऊपर की ओर सीधे कर लें। जब तक सन्तुलन न बनने लगे, इसे दीवार के सहारे करें। इससे अगणित लाभ प्राप्त होते हैं। स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। आँखों तथा कानों को शक्ति और पोषण प्राप्त होता है। इस आसन से पेट के भीतर के दबाव से होने वाले दीर्घकालीन कब्ज जो असाध्य रहता है, वह भी दूर हो जाता है। यह ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता करता है। इस आसन से ओज शक्ति में वृद्धि होती है। आपका मुखमण्डल कान्ति से दमकने लगता है।

सर्वांगासन : कम्बल को भूमि पर फैला लें। पीठ के बल लेट जायें। पेट, जाँघों और पैरों को बिना मोड़े बिलकुल सीधे उठायें। कोहनियाँ भूमि पर ठीक तरह से जमा कर रखें और दोनों हाथों से पीठ को सहारा दें। ठोढ़ी से सीने को दबायें। यह आसन सर्वश्रेष्ठ शारीरिक संघटक है। यह थाइराइड ग्रन्थि की मालिश करता है। थाइराइड ग्रन्थि यदि स्वस्थ है, तो व्यक्ति का स्वास्थ्य निश्चित ही उत्तम होगा, वह दीर्घायु होगा तथा अधिक समय तक युवा रहेगा। इस आसन से मेरुदण्ड को रक्त की अच्छी आपूर्ति होती है। यह अजीर्ण, कब्ज, एपेंडीसाइटिस, अन्य जठर रोगों, आन्त्र रोगों तथा शिराओं की सूजन को दूर करता है।

शीर्ष और सर्वांगासन करने से आन्तरिक संस्थान को पुनर्जीवन प्राप्त होता है। इसके अलावा अन्य और भी आसन हैं-जैसे हलासन, मत्स्यासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, मयूरासन, पादहस्तासन, त्रिकोणासन, चक्रासन, शवासन आदि जो विशेष रूप से आन्तरिक अंगों का प्रभावकारी ढंग से पुनर्जीवन करते तथा शक्ति प्रदान करते हैं।

प्राणायाम : ऊर्जा या शक्ति का सार्वभौमिक मूलतत्त्व प्राण है। यह जीवनी शक्ति है। प्राण की शक्ति से ही कान सुनते हैं, नेत्र देखते हैं, त्वचा में अनुभव होता है, जीभ स्वाद लेती है, नाक गन्ध का अनुभव करती है तथा मस्तिष्क और बुद्धि अपना काम करते हैं। एक तरुणी की मुस्कराहट, संगीत की मधुरता, वक्ता के शब्दों की प्रभावकारी शक्ति तथा किसी प्रिय की वाणी का

आकर्षण-ये सभी प्राण या जीवनी शक्ति के कारण ही हैं। यह प्राण ही है जो पाचन, मल निष्कासन तथा स्रवण की क्रिया हेतु उत्तरदायी है।

विचार शक्ति, संकल्प, चलना, बोलना, लिखना आदि सभी में प्राण व्यय होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के पास प्राण या नाड़ी बल या जीवनी शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है। भोजन, जल, वायु तथा सौर ऊर्जा द्वारा प्राण की आपूर्ति होती है। यह प्राण नाड़ी तन्त्र द्वारा लिया जाता है। प्राण श्वसन द्वारा अवशोषित किया जाता है। अधिक मात्रा में जो प्राण रहता है, वह मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों में संग्रहित हो जाता है। जब वीर्य शक्ति का रूपान्तरण होता है, तो यह संस्थान को प्रचुर मात्रा में प्राण की आपूर्ति करती है। यह मस्तिष्क में ओज के रूप में संग्रहित हो जाती है।

प्राणायाम द्वारा प्राण और शरीर की जीवनी शक्ति का नियन्त्रण किया जाता है। यह श्वास का नियमन करता है। यह सबसे महत्त्वपूर्ण चरण है। प्राणायाम का लक्ष्य प्राण का नियन्त्रण है। प्राणायाम का आरम्भ श्वास के नियमन से होता है तथा इसके द्वारा प्राण पर नियन्त्रण करते हैं और प्राण पर नियन्त्रण द्वारा जीवन ऊर्जा पर नियन्त्रण पाया जाता है। श्वास बृहत् प्राण की अभिव्यक्ति है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा नियमित श्वसन की आदत निर्मित हो जाती है। सामान्य सांसारिक लोगों में श्वसन क्रिया अनियमित होती है।

प्राणायाम का सम्बन्ध वैसे तो श्वसन से ही रहता है; लेकिन फिर भी यह विभिन्न आन्तरिक अंगों तथा सम्पूर्ण शरीर को भी अच्छा व्यायाम प्रदान करता है। प्राणायाम सभी प्रकार के रोगों को दूर करता है। स्वास्थ्य में वृद्धि करता है, पाचन को शक्ति प्रदान करता है। नाड़ियों को बल प्रदान करता है। वासनाओं पर नियन्त्रण करता है और कुण्डलिनी शक्ति जगाता - है। यह अच्छा स्वास्थ्य और मन की स्थिरता प्रदान करता है। प्राणायाम के अभ्यासी का शरीर हलका, निरोग, सुन्दर कान्ति वाला तथा उसकी वाणी मधुर होती है।

जो प्राणायाम के अभ्यासी हैं, उन्हें अच्छी भूख लगती है, वे प्रसन्न-चित्त रहते हैं, सुन्दर व्यक्तित्व के धनी होते हैं और महान् शक्तिशाली, साहसी तथा उत्साही होते हैं। उनका स्वास्थ्य उत्तम होता है। उनकी उच्च स्तरीय मानसिक शक्ति तथा जीवन शक्ति होती है और उनके मन की एकाग्रता भी अच्छी रहती है। योग का यह अंग पूर्व और पश्चिम दोनों जगह के लोगों-पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों के एकदम अनुकूल है।

मन, प्राण और वीर्य के मध्य अन्तरंग सम्बन्ध है। यदि कोई व्यक्ति अपनी वीर्य शक्ति पर नियन्त्रण रखे, तो उसके मन और प्राण भी स्वयं ही नियन्त्रित हो जायेंगे। यदि मन और प्राण पर नियन्त्रण हो जाये, तो मनुष्य इस जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पा जाता है तथा दिव्य ज्ञान, अमरत्व, शान्ति और परमानन्द को प्राप्त करता है। प्राणायाम से समस्त रोग दूर हो जाते हैं तथा स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। यह पाचन को ऊर्जा प्रदान करता है, नाड़ियों को बल प्रदान करता है और मनुष्य में छिपी अदृश्य गुप्त शक्तियों को जगाता है। योग विज्ञान में भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों के लिए कई आश्चर्यजनक अभ्यास हैं। अनेक लोगों ने प्राणायाम का अभ्यास नियमित रूप से कुछ समय तक करके अगणित लाभ प्राप्त किये हैं। लोग अनावश्यक रूप से प्राणायाम से होने वाले खतरों के बारे में लोगों को डराते हैं, जब कि इसमें किसी भी प्रकार का कोई खतरा नहीं है। प्राणायाम का अभ्यास अच्छी तरह सीख कर क्रमबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए।

कपालभाति : यह कपाल के शुद्धिकरण हेतु की जाने वाली क्रिया है। कपाल का अर्थ है- 'मस्तक', भाति का अर्थ है- 'चमकाने वाला'। इस व्यायाम से मस्तक दीप्तिमान होता है। इसकी क्रिया निम्नानुसार है-

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें। आँखें बन्द कर लें। जल्दी-जल्दी पूरक और रेचक करें। इसे अत्यन्त तीव्रतापूर्वक करना चाहिए। इसको करने से अभ्यासी को अत्यधिक मात्रा में पसीना आता है। यह फेफड़ों के लिए अच्छा व्यायाम है। जो कपालभाति में निपुण होते हैं, वे सरलतापूर्वक भस्त्रिका कर सकते हैं। पेट की मांसपेशियों को संकुचित करते हुए शीघ्रता से बलपूर्वक पूरक और रेचक करें। एक चक्र में २० रेचक करें; फिर धीरे-धीरे इनको १२० तक ले कर जायें। कपालभाति में कोई कुम्भक नहीं होता। कपालभाति श्वसन संस्थान और नासिका को स्वच्छ करता है। यह श्वास नलिकाओं में से कफ को दूर करता है, जिसके फलस्वरूप अस्थमा रोग में आराम मिलता है और धीरे-धीरे यह ठीक हो जाता है। इससे फेफड़ों के हर अंग को उचित मात्रा में आक्सीकरण प्राप्त होता है। इससे राजयक्ष्मा (टी.बी.) रोग भी दूर हो जाता है। रक्त की अशुद्धियाँ बाहर निकल जाती हैं। परिसंचरण तथा श्वसन संस्थान अधिक स्वस्थ हो जाते हैं।

कपालभाति षट् क्रियाओं में से एक है अर्थात् यह प्राणायाम का अभ्यास करने वाले लोगों के लिए शुद्धिकरण हेतु अनिवार्य क्रियाओं में से एक है। इसकी अन्य क्रियाएँ हैं-नेति, धौति,

नौलि, वस्ति और त्राटक। वे साधक जो अपनी नित्य साधना में प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, यदि कुछ चक्र कपालभाति के कर लें, तो वे अधिक अच्छी प्रकार से प्राणायाम कर सकते हैं।

सुखपूर्वक प्राणायाम : पद्मासन में बैठ जायें। आँखें बन्द कर लें। दायीं ओर के नासिका छिद्र को अपने दायें हाथ के अँगूठे से बन्द कर लें। अब बायें नासिका छिद्र से धीरे-धीरे श्वास लें। पूरी श्वास भर जाने पर कनिष्ठा और अनामिका ऊँगली द्वारा बायें नासिका छिद्र को भी बन्द कर दें। तर्जनी और मध्यमा उँगली को अन्दर की ओर मोड़ कर रखना है। अब जब तक सरलतापूर्वक रोक सकते हों, श्वास को रोके रहें। फिर अँगूठे को हटा कर श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालें। अब दायें नासिका छिद्र से श्वास धीरे-धीरे लीजिए, अँगूठे से इसे बन्द कर दें और जितनी देर सरलतापूर्वक रोकते बने, श्वास को भीतर रोके रहें। फिर अनामिका और कनिष्ठा उँगली को हटा कर बायें नासिका छिद्र से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें। कुम्भक (श्वास रोकना) के समय प्रणव या अपने इष्ट मन्त्र का जप करें।

प्रारम्भ में थोड़े दिन मात्र पूरक और रेचक करें। थोड़े अभ्यास के बाद कुम्भक भी संयुक्त कर दें। प्रारम्भ में मात्र १० सेकेण्ड कुम्भक का अभ्यास करें और फिर धीरे-धीरे कुम्भक का समय बढ़ायें। पहले आप ५ प्राणायाम सुबह-शाम करें। थोड़े अभ्यास के बाद प्राणायामों की संख्या दस कर दें। धीरे-धीरे प्राणायामों की संख्या सुबह-शाम २० कर दें। बाद में पूरक, कुम्भक और रेचक का अनुपात १:४:२ करना है; लेकिन इसे प्रारम्भ से ही प्राप्त करने की चेष्टा न करें, थोड़े दिनों के अभ्यास से अनुपात स्वयं ही आ जायेगा।

इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर मजबूत और स्वस्थ हो जाता है। अभ्यासी दिखने में सुन्दर हो जाता है तथा उसकी वाणी मधुर और सुरीली हो जाती है। वह सभी प्रकार के रोगों से मुक्त हो जाता है और ब्रह्मचर्य में पूर्ण स्थित हो जाता है। उसकी भूख बढ़ जाती है। उसकी नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। उसका मन एकाग्र हो जाता है। उसके अन्दर के रजोगुण और तमोगुण नष्ट हो जाते हैं। मन ध्यान और धारणा हेतु तैयार हो जाता है। उच्च साधक ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त करता है।

उज्जाई प्राणायाम : पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जायें। मुख बन्द रखें। दोनों नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे श्वास खींचें। श्वास लेते समय गले में से धीमी आवाज करें। जब फेफड़ों में पूरी श्वास भर जाये, तो दोनों नासिका छिद्रों को दायें हाथ से बन्द करके (पूर्वानुसार मुद्रा द्वारा) ठोढ़ी से सीने पर दबाव डाल कर जालन्धर बन्ध लगायें। अब श्वास को तब तक रोके रहें, जब तक सहजतापूर्वक रोक सकें। फिर जालन्धर बन्ध खोलें और बायें नासिका छिद्र से बहुत धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें।

यह प्राणायाम खड़े रह कर भी किया जा सकता है। इससे सिर की गरमी शान्त होती है। इसके अभ्यास से अभ्यासी बहुत सुन्दर हो जाता है। इससे जठराग्नि तीव्र होती है। इससे राजयक्ष्मा, अस्थमा तथा फेफड़ों के सभी रोग दूर होते हैं। क्षय और मृत्यु को दूर भगाने के लिए उज्जाई करें।

भस्त्रिका : शीघ्रता से बलपूर्वक रेचक, यह भस्त्रिका का लक्षण है।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। शरीर, गला और सिर सीधा रखें। हाथों को घुटनों पर आराम से रखें। मुख बन्द करें। अब जल्दी-जल्दी २० बार श्वास लें और छोड़ें। साँस के साथ-साथ सीने को भी सिकोड़ें और फैलायें। श्वास का शीघ्र रेचन बाद में तीव्र क्रम में बदल जायेगा। आप कण्ठ-द्वार को आंशिक रूप से बन्द भी कर सकते हैं। २० बार पूरक और रेचक के बाद एक गहरा पूरक करें। फिर जब तक सम्भव हो, श्वास को रोकें। फिर अत्यन्त धीरे-धीरे श्वास को दोनों नासिका रन्ध्रों से बाहर निकालें। २० रेचक का एक चक्र होता है। आप प्रातः और सायं तीन या चार चक्र कर सकते हैं। प्रारम्भ में मात्र १० रेचक का एक चक्र करें और फिर धीरे-धीरे इन्हें बीस तक ले कर जायें।

यह प्राणायाम जाँघों पर हाथों को रख कर, खड़े-खड़े भी किया जा सकता है।

यदि आपको चक्कर की अनुभूति हो, तो अभ्यास थोड़ी देर रोक दें और कुछ सामान्य श्वास-प्रश्वास लें। प्रत्येक चक्र के बाद आप २ मिनट तक विश्राम ले सकते हैं।

भस्त्रिका गले की सूजन को दूर करता है, जठराग्नि बढ़ाता है, कफ नष्ट करता है, नासिका तथा सीने के रोगों को दूर करता है और अस्थमा, राजयक्ष्मा आदि को जड़ से दूर करता है। यह भूख बढ़ाता है। यह व्यक्ति को कुण्डलिनी जागरण के लिए तैयार करता है। भस्त्रिका से कफ, वात और

पित्त द्वारा उत्पन्न होने वाले सभी रोग दूर हो जाते हैं। यह शरीर को पर्याप्त उष्णता प्रदान करता है। यह नाड़ियों को शुद्ध करता है। यह सभी प्राणायामों में श्रेष्ठ है। भस्त्रिका का अभ्यास प्राण के सुषुम्ना में स्थित तीनों ग्रन्थियों के भेदन में सहायता करता है। इसका अभ्यासी सदा स्वस्थ रहता है।

शीतली : जीभ को मोड़ कर लम्बाई में नली जैसी बना लें और ओठों से थोड़ा बाहर निकाल लें। मुँह के द्वारा 'सी' की ध्वनि के साथ तेजी से हवा खींचें। अब जितनी देर सम्भव हो, श्वास को भीतर रोके रहें। अब धीरे-धीरे दोनों नासिका रन्ध्रों से श्वास बाहर निकाल दें। इसका अभ्यास खड़े-खड़े, बैठे हुए या चलते हुए भी १० से १५ मिनट तक किया जा सकता है।

प्राणायाम रक्त को शुद्ध करता है। यह प्यास बुझाता है तथा भूख बढ़ाता है। यह संस्थान को शुद्ध करता है और गुल्म (असाध्य अजीर्ण), तिल्ली में सूजन, विभिन्न असाध्य रोग, ज्वर, राजयक्ष्मा, अपच, पैत्तिक दोष तथा अन्य रोगों को दूर करता है। यह रक्त के सभी प्रकार के विषों को दूर करता है। इस प्राणायाम का लम्बे समय तक अभ्यास करने से रक्त इतना अधिक शुद्ध हो जाता है कि उसके शरीर पर सर्प का विष भी अपना प्रभाव नहीं डालता। जब आपको प्यास का अनुभव हो, शीतली का अभ्यास करें; आपकी प्यास तत्क्षण शान्त हो जायेगी।

ऐसा कहा जाता है कि सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा वायु की अधिकता दूर होती है, उज्जाई प्राणायाम से अधिक मात्रा में कफ नष्ट हो जाता है, शीतली पित्त की अधिकता को दूर करता है और भस्त्रिका अकेला ही इन तीनों की अधिकता को दूर करता है।

महामुद्रा

महामुद्रा के अभ्यास हेतु बायीं एड़ी से गुदा-द्वार को दबायें और दायें पैर को सामने फैला लें, अब दोनों हाथों से दायें पंजे को पकड़ें। श्वास भरें और रोक कर रखें, ठोढ़ी से सीने पर दबाव दें और जालन्धर बन्ध लगा लें। अपनी दृष्टि को त्रिकुटी पर लगाये रखें। यथासम्भव श्वास को रोक कर रखें। फिर धीरे से सिर को ऊपर उठायें और धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालें। श्वास बाहर निकालने में कभी शीघ्रता न करें। आप इसकी चार से छह बार पुनरावृत्ति कर सकते हैं। यही क्रिया आप दायें पैर की एड़ी को गुदा-द्वार पर लगा कर, बायें पैर को फैला कर और बायें पंजे को हाथों से पकड़ कर करें।

यह राजयक्ष्मा, बवासीर के मस्से, तिल्ली का बढ़ना, अपच, पेट की असाध्य सूजन, कब्ज, ज्वर आदि दूर करती है और दीर्घायु प्रदान करती है। इसके द्वारा अभ्यासी को महान् सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

यह वास्तव में महामुद्रा ही है। इसका अभ्यासी सभी प्रकार के पदार्थों को पचा सकता है; यहाँ तक कि अभ्यासी के अन्दर जा कर विष भी अमृत में बदल जाता है।

३२. मनुष्य सदा के लिए जीवित रह सकता है

(जीओर्जी गुरेविच)

हम जीते और मरते क्यों हैं? हम कितने समय तक जीवित रह सकते हैं? क्या मृत्यु को दूर रखा जा सकता है तथा कितने समय तक इसे दूर रखा जा सकता है? ये प्रश्न वैज्ञानिकों तथा अन्य लोगों को समान रूप से सदा से परेशान करता रहा है। मैंने तो सामान्यतया यह उत्तर पाया है कि मनुष्य अपने जीवन की प्राकृतिक सीमा १५० वर्षों तक जीवित रह सकता है।

लेकिन यह प्राकृतिक सीमा क्या है? कोई व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि इस सीमा के पाँच वर्ष बाद क्या होगा ? क्या मृत्यु निश्चित है?

मृत्यु क्यों आती है? इस प्रश्न के दो सौ उत्तर दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए-क्योंकि अंग कमजोर हो जाते हैं, सभी उत्तेजनाएँ प्रयोग कर ली जाती हैं, रुधिर वाहिनियों में कैल्शियम जमा हो जाता है, श्वेतक की गति कम हो जाती है, सभी संयोजी ऊतक नष्ट हो जाते हैं तथा आन्त्र जीवाणुओं द्वारा अंगों में विष फैल जाता है आदि।

ये क्षतिग्रस्त अंग ऊपर से अच्छे दिखायी देते हैं। जिस प्रकार मशीनें पुरानी हो जाती हैं, जूते-कपड़े आदि फट जाते हैं, वैसे ही सम्भव है शरीर भी चमड़े के कोट की भाँति जल्दी या देर से फट जाता है।

ये सभी पुराने विचार हैं। आज विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव-शरीर की चमड़े के कोट, मशीन अथवा चट्टान से तुलना नहीं की जा सकती। इसकी तुलना एक बहती हुई नदी से की जा सकती है जो हजारों वर्ष पूर्व भी बहती थी और निरन्तर आगे बढ़ती जाती है तथा अन्त में समुद्र में चली जाती है; किन्तु फिर भी यह वैसी की वैसी ही बनी रहती है। क्या कोई ऐसा कहता है कि नदी पुरानी होने के कारण टूट-फूट गयी है?

और, हम मानव भी नदी की तरह ही हैं। हमारा जीवन भी स्वयं नवीन होता रहता है। हमारे शरीर की श्वेत रक्त कणिकाएँ स्वयं ही निरन्तर नष्ट होती रहती हैं और नयी कणिकाओं द्वारा बदली जाती रहती हैं। यह अनुमान है कि लगभग चार माह में मनुष्य का रक्त पुनः बदल कर नया हो जाता है। मनुष्य के शरीर के सभी अणु कुछ वर्षों में पुनः प्रतिस्थापित हो जाते हैं।

लेकिन मनुष्य एक रचना न हो कर एक बहती नदी या एक प्रक्रिया है, तो अंगों के बेकार होने का सिद्धान्त निराधार है। जो-कुछ भी जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में प्रदूषित, विषाक अथवा नष्ट होता है, वह तो अंगों में से बहुत पहले ही मुक्त हो जाता है। पचास वर्षों के लिए यह शरीर इसमें होने वाली टूट-फूट को ठीक कर लेता है; लेकिन इसके बाद इसकी क्षमता में कमी आ जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह आँतों, रक्त वाहिनियों और हृदय का दोष नहीं है, यह दोष है शरीर के युग्म अंगों जैसे नाड़ी तन्त्र का।

तथ्यों से एक अन्य स्पष्टीकरण भी उत्पन्न होता है। यह तो भली-भाँति ज्ञात है कि नाड़ी कोशिकाएँ मनुष्य के शरीर में फिर से नहीं बनीं। इसलिए ये मानव-शरीर में प्रति वर्ष कम होती जाती हैं और धीरे-धीरे सम्पूर्ण नाड़ी तन्त्र कमजोर हो जाता है।

क्या हमें वास्तव में अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो गया, या हमने इसे अनुत्तरित ही छोड़ दिया ? ऐसा लगता है कि हमने इसे अनुत्तरित ही छोड़ दिया है। हमारे शरीर में नाड़ी कोशिकाएँ एक क्रिया की भाँति हैं। इनके द्वारा एक अणुओं का सतत प्रवाह स्थान लेता है। कुछ अणु अलग चले जाते हैं और नये जन्म लेते हैं। कोशिकाएँ स्वयं कई बार स्वयं ही नवीन होती रहती हैं और उसके बाद यह स्व-नवीनीकरण की प्रक्रिया किसी कारण से रुक जाती है। ऐसा इसीलिए होता है; क्योंकि नाड़ी तन्त्र अधिक समय तक जीवित रहता है।

देखिए, पेड़ सर्वाधिक समय तक जीवित रहते हैं; लेकिन गेहूँ का पौधा जिसमें कोई नाड़ी नहीं होती, मात्र एक वर्ष जीवित रहता है और इसी प्रकार अमीबा सिर्फ आधे घण्टे जीवित रहता है, उसमें कोई नाड़ी नहीं होती।

अब हम विपरीत दृष्टिकोण लें और यह स्वीकार करें कि नाड़ी तन्त्र कमजोर नहीं; बल्कि अंगों के मध्य एक मजबूत तन्तु है। (वास्तव में नाड़ी कोशिकाएँ सबसे लम्बा जीवन जीती हैं।) लेकिन यह भी आंशिक ही पूर्ण है। नाड़ियाँ स्थायी रूप से जीवित नहीं रहतीं।

किन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि जो उच्च श्रेणी के प्राणी हैं, जिनका पूर्ण नाड़ी तन्त्र है, वे सबसे अधिक जीते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। एक कछुआ, मगरमच्छ और एक विशेष प्रकार की मछली मनुष्य से अधिक जीती है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दीर्घायु सीधे ही नाड़ी तन्त्र की पूर्णता पर निर्भर नहीं करती है।

इसलिए यह प्रश्न कि वृद्धावस्था क्यों प्रारम्भ होती है? अनुत्तरित है।

और वृद्धावस्था के लिए दो सौ उत्तरों को पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति के उत्तर में एक ही बात मुख्य है कि जीवन अनन्त नहीं हो सकता तथा उनका केन्द्र वह कमजोर बिन्दु है, वह कमजोरी है जो शीघ्र अथवा विलम्ब से अंगों के क्षय (बड़ी आँत, नाड़ी कोशिकाओं) को प्रेरित करती है।

कोई भी व्यक्ति उस सही बिन्दु तक पहुँचने में सहायता नहीं कर सकता कि क्या मनुष्य-शरीर वास्तव में इतना कमजोर है कि वह प्राकृतिक सीमा रेखा तक जीने में सक्षम नहीं है?

और हम यहाँ पर पाठकों को स्मरण करा दें कि यह बात आज से सौ वर्ष पूर्व महान् अँगरेज वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने 'द ओरीजिन ऑफ स्पेशीज वाइ मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन' शीर्षक से प्रकाशित की थी।

डार्विन के पहले लोग प्रकृति की प्रशंसा करते हुए कहते थे-"प्रकृति की व्यवस्था अत्यन्त बुद्धिमानी से की गयी है, प्रत्येक घास के तिनके तथा छोटे-से-छोटे कीट की भी कितनी उपयोगिता है।" लेकिन डार्विन ने जब यह बताया कि 'जो बुद्धिमान् और उपयोगी होता है, मात्र

वही प्रगति करता है और जो अनुपयोगी हैं, वे समाप्त हो जाते हैं, मर जाते हैं।' तो यह भीरू विचार जन्मा कि शायद वृद्धावस्था और मृत्यु की भी कुछ-न-कुछ उपयोगिता होगी, कुछ अच्छी होंगी (डार्विन के अनुसार शायद)। एक जन्तु के लिए नहीं, वरन् एक पूर्ण प्रजाति के लिए।

हम जानते हैं कि वायरस (जीवाणु) से ले कर मनुष्य तक पीढ़ी के रूप में स्थायी रहते हैं और एक हठ कर दूसरी पीढ़ी को स्थान देता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि पीढ़ी का परिवर्तन प्रजातियों की पूर्णता तथा जीवन को शीघ्रता से स्वीकारने में सहायक होता है। एक प्राणी इस प्रकार स्वयं ही बदलती परिस्थितियों, बदलते व्यवहार तथा शरीर के आकार को स्वयं ही स्वीकार कर लेता है; लेकिन प्रत्येक निर्माता जानता है कि वह एक रचना को अनन्त रूप से नहीं परिवर्तित कर सकता है। अन्त में एक स्थिति ऐसी आती है, जब यही अच्छा होता है कि पूरा क्रम पुनः शुरूआत से प्रारम्भ किया जाये।

प्रकृति माता-पिता से जो पूर्व से प्राप्त है, उसे संयुक्त करके सन्तान का निर्माण फिर से प्रारम्भ करती है। और तब एक आदर्श प्रतीक बच्चा प्रकट होता है। लेकिन पुराना जो आदर्श है माता-पिता, वे पुराने, मजबूत और बड़े रहते हैं तथा वे एक ही जगह में उतना ही भोजन भी लेते हैं, इसलिए वे अपनी सन्तान हेतु बाधा बन जाते हैं। उदाहरण स्वरूप शेर को लीजिए। जब तक पिता शेर अपने बच्चों के लिए भोजन लाता है, तब तक तो वह अपने बच्चों के विकास में सहायक रहता है; लेकिन जब शेर का परिवार अलग होता है, तो पिता शेर तरुण शेरों के लिए बाधा बन जाता है। क्योंकि वह सबसे शक्तिशाली है; इसलिए वह भोजन का सबसे बड़ा हिस्सा अपने लिए रख लेता है। शेर के बच्चे उसे हराने में अक्षम रहते हैं, तब प्रकृति उनकी सहायता के लिए आगे आती है। यह पिता शेर पर दया करती है और उसके रक्त को ठण्ढा कर देती है। शेर बूढ़ा हो जाता है। वह अपने बच्चों के लिए स्थान दे देता है और मर जाता है।

चूँकि पीढ़ी में परिवर्तन वास्तव में प्रजातियों के लिए श्रेष्ठ है; इसलिए प्रकृति इस बात का अवश्य ध्यान रखती है कि एक पीढ़ी दूसरी से आगे बढ़ सके, वृद्ध तरुणों को मार्ग प्रदान करें।

इस दृष्टिकोण हेतु जीव विज्ञान में अनन्त उदाहरण हैं-जैसे इफीमेरा मात्र कुछ घण्टे जीवित रहता है। वह अण्डे देता है और मर जाता है। इसके लारवा तीन वर्ष तक जीवित रहते हैं।

जैसे ही गेहूँ के बीज गिर जाते हैं, पौधा सूख जाता है। यह एक या दो माह और जीवित नहीं रह सकता, जब कि उसे सभी आवश्यक पदार्थ - जैसे धूप, मिट्टी, कार्बोनिक अम्ल आदि प्राप्य रहते हैं। क्योंकि यह पौधा पुनः बीज नहीं दे सकता। यह अगली पीढ़ी को मिलने वाले मिट्टी के लवणों का प्रयोग करके समाप्त कर देगा। इस कारण इसका आगे जीवित रहना अनुपयोगी है और आने वाली प्रजातियों के लिए हानिकारक भी है। इसलिए प्रकृति इसे समाप्त कर देती है और यह सूख जाता है।

लेकिन जीवन की समाप्ति उन पौधों या प्राणियों में होती है जो जीवन में मात्र एक बार ही प्रजनन करते हैं।

पशु और चिड़ियाँ अपने बच्चे की देखभाल करते हैं। उनके बच्चों को इस संसार में जन्म लेने के बाद भी माता-पिता की आवश्यकता रहती है। इसी कारण प्राणियों को उच्च प्रजातियों (मानव सहित) में अंगों के स्व-विखण्डन की प्रक्रिया धीरे-धीरे वृद्धावस्था के रूप में गुप्त रूप से चलती रहती है, और ये वर्ष उनकी अन्तिम सन्तान को विकसित करने हेतु आवश्यक रहते हैं।

मनुष्य को कुल कितने वर्ष दिये गये हैं? उसे विकसित होने में १५-२० वर्ष लगते हैं। इसके बाद वह संसार में पर्याप्त संख्या में बच्चे उत्पन्न करता है और उनमें से कम-से-कम दो तो बड़े होते ही हैं। दो का बड़ा होना आवश्यक है, अन्यथा प्रजाति लुप्त हो जायेगी। मात्र दो बच्चों के लिए काड फिश ३६ अरब तथा चिड़ियाँ सौ बच्चों को जन्म देती हैं। मनुष्य समस्त प्राणियों में सर्वाधिक संवेदनशील, श्रेष्ठ व्यवस्थापक और सबसे अधिक ध्यान रखने वाला प्राणी है। उसने विकास में कीर्तिमान स्थापित किया है। वह (आदि मानव) आठ-दस बच्चों में से दो बच्चों को संरक्षित करने में सफल रहा है। मनुष्य दस बच्चों को जन्म देने में २० से ३० वर्ष का समय लेता है और उनमें से अन्तिम बच्चे को बड़ा करने में उसे १५ वर्ष लगते हैं। इसलिए यह सम्पूर्ण समय ५० से ६५ वर्ष का होता है।

इस प्रकार ये निष्कर्ष भी निराश करने वाले हैं और इनसे कोई दावा नहीं किया जा सकता कि ऐसी कोई प्राकृतिक सीमा है जिसे प्राप्त करने की चेष्टा की जानी चाहिए। क्योंकि इनके अनुसार समय की प्राकृतिक लम्बाई स्थायी है और कुछ ही १५० वर्ष के स्थान पर ५० या ६५ वर्ष जीवित रहते हैं और इसके बाद नाड़ी तन्त्र बन्द हो जाता है। उसके बाद समाप्ति या आत्म-क्षय हो

जाता है। लेकिन यदि अंगों का स्वयं क्षय प्रजातियों के लिए श्रेष्ठ है, तो अंगों में कुछ ऐसी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए जिससे जीवन का अन्त उचित समय पर हो, न तो बहुत जल्दी, न ही बहुत देर से।

ऐसे अवरोधक जो एकदम ठीक समय पर कार्य करते हैं, उन्हें यन्त्र शास्त्र में 'समय घड़ी' कहते हैं। प्रत्येक प्राणी और पौधे में स्वयं 'समय घड़ी' रहती है; क्योंकि प्रत्येक समय पर होने वाले कार्य के लिए 'समय घड़ी' की आवश्यकता होती है। बीजों को वसन्त ऋतु में अंकुरण के लिए तथा वे शीत ऋतु में न अंकुरित हों, इसके लिए 'समय घड़ी' की आवश्यकता होती है। पत्ती को भी 'समय घड़ी' चाहिए, ताकि वह पतझड़ में ही पीली हो कर झड़े, न कि वसन्त ऋतु में। पुष्प को खिलने के लिए 'समय घड़ी' की जरूरत है। भूखे भेड़िये को एक घड़ी अपने शिकार के लिए तथा एक घड़ी पेट भर जाने पर उसे पचाने के लिए। समय पर नींद लेने और समय पर जागने के लिए भी एक घड़ी की आवश्यकता है।

प्रत्येक समय घड़ी उपकरण में निम्न प्रायोगिक क्रम रहता है-उसमें एक समय मापक यन्त्र तथा एक घड़ी जो रोकने वाले को सही समय पर संकेत भेजे। यह भीतर और बाहर के कुछ कार्यों को रोक देता है।

इस उपकरण का कोई चित्र तो नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि इस घड़ी में कोई तार और बटन तो होते नहीं हैं। शरीर में सूचक का काम नाक, आँखें, नाड़ियाँ, ग्रन्थियाँ, या रक्त और प्लीहा के कुछ पदार्थों द्वारा किया जाता है। हमारे शरीर में वृद्धावस्था और मृत्यु का पता लगाना सरल काम नहीं होगा। ये सभी अभी मात्र अपरिपक्व तथा विवादास्पद विचार हैं। उनके ऊपर कुछ भी लिखना अनावश्यक है।

यहाँ पर सर्वप्रथम अध्ययन का विषय गिनती करने के उपकरण हैं। हमारे जीवन की घड़ी क्या गिनती है? क्या यह समय या वर्ष हैं? नहीं, ऐसा नहीं है। वृद्धावस्था भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न समय पर आती है। कुछ लोग ७० वर्ष में वृद्ध होते हैं, जब कि कुछ ३५ वर्ष में। शायद यह घड़ी हमारे बच्चों को गिनती है। यदि हमने संसार में पूर्व निर्धारित संख्या में बच्चे लाये हैं, तो यह समय मृत्यु का है, लेकिन ऐसी स्थिति में अविवाहित और निःसन्तान लोग अन्य की तुलना में अधिक जीते हैं और यह प्रजातियों के प्रतिकूल होगा।

अनुमान लगाने से कोई लाभ नहीं है। यह समस्या विज्ञान द्वारा पहले ही हल की जा चुकी है। हमारे जीवन की घड़ी हमारी समस्याओं, दुःखों, उत्तरदायित्वों, थकावट, अस्वस्थता आदि को गिनने के लिए है, सिद्ध हो चुकी है। एक कहावत है- "दुःख मनुष्य को बूढ़ा कर देता है।" इसमें निहित संकल्पना की प्रायोगिक रूप से पुष्टि की जा चुकी है। जो कुत्ते और चूहे विपरीत परिस्थितियों में रखे जाते हैं और वे जानवर जो भयभीत रहते हैं, जिन्हें कष्ट रहता है, वे अन्य की तुलना में शीघ्र बूढ़े होते हैं।

तब शायद दीर्घायु का रहस्य मानव की कठिनाइयों, दुःख, निराशा आदि में है। वह सभी करिए जो आपके सुख में अर्थात् प्रसन्नता में वृद्धि करे।

सोवियत यूनियन में जो मनुष्य का जीवन सुखी कर सके, वह सभी कुछ किया जाता है और वहाँ मानव के औसत जीवन-काल में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही है।

रूस में क्रान्ति के पूर्व १० बच्चों में से ३ बच्चे एक वर्ष से भी कम आयु के मर जाते थे और दो बच्चे नौ वर्ष की आयु से पहले मर जाते थे। सोवियत यूनियन में बच्चे की मृत्यु कम ही होती है। हमारे देश में लगभग सभी लोग वृद्धावस्था तक जीते हैं। हमने काम और जीवन की स्थितियों को सुधार कर, चिकित्सा सुविधा, क्षय चिकित्सालय तथा पेंशन आदि प्रदान कर वृद्ध और दुर्बल हो रहे लोगों की जीवन अवधि में वृद्धि कर दी है।

हमारे देश ने सामाजिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए प्रयास किया है। बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, उत्पीड़न, अन्याय आदि हमारे देश के लिए अनजाने हैं।

इसके अतिरिक्त हमने उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी प्रयास किया है जो शरीर को रोगी बनाते हैं-जैसे संक्रामक रोग, मानसिक आघात, दर्द, अति श्रम आदि। कोई भी यह कह सकता है कि सोवियत लोगों के लिए प्रसन्नता और खुशी के लिए यथासम्भव वातावरण निर्मित किया गया है।

लेकिन अब हम पुनः वृद्धावस्था की समस्या पर वापस आ जाते हैं। मनुष्य की दिन-प्रतिदिन में आने वाली समस्याएँ कहाँ गिनी जाती हैं? वह सूचक कहाँ है जो वृद्धावस्था के आने की सूचना दे? विज्ञान अभी भी इस घड़ी को नहीं खोज पाया है। हम अपनी कल्पनाओं को ही

अभिव्यक्त कर सकते हैं। सम्भवतः 'वृद्धावस्था की घड़ी' मस्तिष्क में स्थित हो। यह हमारी कठिनाइयों, दुःखों और निराशाओं-नकारात्मक आवेशों की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति का प्रयोग करके गणना करती है। यह मस्तिष्क है जो समस्त आवेगों के लिए उत्तरदायी है।

'वृद्धावस्था की घड़ी' का स्थान कहाँ है? यह 'घड़ी' कैसी है?

ज्यादातर प्रत्येक कष्ट और अंगों के पुनर्स्थापन तथा बदली हुई परिस्थितियों के साथ इसके अनुकूलन में 'वृद्धावस्था की घड़ी' में किसी प्रकार का पदार्थ जमा हो जाता है। सम्भव है, यह एक नाड़ी-वर्णक है। जब इस पदार्थ की एक निश्चित मात्रा घड़ी के भीतर एकत्र हो जाती है, तो घड़ी कार्य करना प्रारम्भ करती है और यह संकेत भेजती है कि वृद्धावस्था को प्रारम्भ कर दिया जाये और जीवन को समाप्त कर दिया जाये।

और, इस प्रकार वृद्धावस्था प्रारम्भ हो जाती है और अंगों का क्षय प्रारम्भ हो जाता है।

वृद्धावस्था के धीरे-धीरे विकास के साथ मनुष्य में नियमितता में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है-जैसे रक्त दाब बढ़ जाता है, हड्डियों में से कैल्शियम निकल कर वाहिनियों में जमा होने लगता है, कुछ कोशिकाएँ अन्य के ऊपर उग आती हैं (कैंसर), उपापचय बढ़ जाता है, रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है और इसी तरह ये परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं।

ये सभी रोग चिकित्सा विज्ञान को ज्ञात हैं और चिकित्सक इन्हें दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं; लेकिन उसमें एक ही बात है कि औषधियाँ वृद्धावस्था के इलाज में सफल नहीं हुई हैं, वे मात्र इसे लम्बा कर रही हैं। ये उस कारण का उपचार न करके, प्रभाव का उपचार कर रही हैं और वृद्धावस्था की प्रक्रिया अब भी नहीं रुक पायी है।

इसमें प्रकृति भी हमारे लिए हितकारी सिद्ध नहीं हुई है। इसने हमें जीवन के प्रति अत्यन्त प्रेम दिया है; लेकिन साथ-ही-साथ इसने हमें ६० से ७० वर्ष का निर्धारित समय इसका आनन्द उठाने के लिए दिया है। और, फिर निर्दय आत्म-क्षय आता है।

प्रकृति से आशा को खो कर हमने एक कार्यरत आशा को प्राप्त किया है, वह है-दीर्घायु को अपनी स्वयं की शक्तियों से प्राप्त करना।

हर विष के लिए कोई-न-कोई प्रतिकारक अवश्य होता है। खदानें खाली हो सकती हैं, रुकी हुई घड़ी के काँटे चल सकते हैं और यहाँ तक कि आत्म-क्षय की प्रक्रिया भी रोकी जा सकती है।

यदि हाथों की भूमिका, उस उपकरण की भूमिका जो वृद्धावस्था को प्रारम्भ करता है, किसी पदार्थ द्वारा संचालित की जा सकती होती, तो समस्या की गम्भीरता कम हो जाती। एक छोटा उपचार या कहिए एक शल्य चिकित्सा या इंजेक्शन अंगों को कुछ वर्षों के लिए पुनर्युवा बना देता है, और इसी उपचार की पुनरावृत्ति पुनः व्यक्ति को युवा बना देती है।

लेकिन हम इस तरह रुकी हुई घड़ी की सुइयों को पुनः-पुनः गतिमान करके कब तक जीवित रह सकते हैं? यह सब निर्भर है चिकित्सक की कुशलता पर यदि उसे घड़ी की सुइयों को चलाना आता हो तो, और तब हम कुछ दस वर्षों तक या और अगले दस वर्षों तक, बचे हुए युवा लोग सौ वर्षों, दो सौ वर्षों तक, आने वाले हजारों वर्षों तक जीवित रह सकेंगे।

मैंने पिछली पूरी गरमी के मौसम में सोचा। मैंने अपने विचारों को पेपर पर लिखा और मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। क्या मृत्यु वास्तव में स्वयं बन्द होने वाली क्रिया है? क्या यह सम्भव है, हमारे वंशज हजारों वर्षों तक जीवित रहें? यह सम्भव नहीं है। मैंने जरूर कोई गलती की है।

लेकिन एक बार मैं एक गणितज्ञ से मिला। वह कहता था-"मुझे विज्ञान के चमत्कारों की सहायता की आवश्यकता है। हम पूर्वाग्रहों के प्रदेश में रह रहे हैं और इससे मुक्ति हेतु हम कुछ नहीं कर सकते।"

उस गणितज्ञ ने रोग को वृद्धावस्था का कारण माना और उसने वृद्धावस्था पर विजय हेतु एक यन्त्र बनाने का सुझाव दिया जो रोगों की पहचान करे और उपचार हेतु नयी विधियों की खोज करे।

कुछ समय बाद मैं एक अन्य व्यक्ति से मिला जो एक आविष्कारक था। वह भी यह ही धारणा रखता था कि मृत्यु अनिवार्य नहीं है, प्रति २० वर्षों में एक बार शल्यक्रिया करवाने से मनुष्य सदा युवा बना रहेगा और इसके लिए प्रति २० वर्ष में एक बार विशेष शल्यक्रिया पर्याप्त होगी।

इसके बाद मैंने एक लेखक की विज्ञान के चमत्कारों की पुस्तकों में निम्न विचार पाया कि जीवन स्वयं अमरता हेतु प्रयत्नशील रहता है। इसकी सहायता करके हम इसे ३०० वर्ष या इससे भी अधिक बढ़ा सकते हैं।

ठीक है! यह विचार वातावरण में है और विज्ञान इसके समीप पहुँच रहा है। यह समय अत्यन्त व्यस्तता का है।

इस लेख में दिया गया विचार 'सोवियत यूथ' पत्रिका में प्रस्तुत किया गया था। अब मुझे देश के सभी भागों से पत्र प्राप्त हो रहे हैं। मुझसे सम्पर्क करने वाले कुछ लोग मेरे विचार से सहमत हैं, कुछ नहीं। कुछ ने अपने सुझाव भेजे हैं; लेकिन सभी का विचार यही है कि मृत्यु से लड़ा जाना चाहिए।

मुझे भारत से भी 'सोवियत लैंड' पत्रिका के द्वारा इस लेख से सम्बन्धित पत्र प्राप्त कर प्रसन्नता हुई।

शायद सम्पूर्ण जगत् के वैज्ञानिक यदि मिल-जुल कर प्रयत्न करें, तो वे वृद्धावस्था और मृत्यु की समस्या को हल करने में सफल होंगे। यदि संसार के सभी देश मृत्यु के विरुद्ध घोषणा करें, तो यह एक आश्चर्यजनक संयुक्त प्रयास होगा। ('सोवियत लैंड' से साभार)

३३. क्या दीर्घायु का कोई रहस्य है?

सोमरसेट मुघम एक सिगरेट का डिब्बा लेने गये थे, वहाँ उन्होंने 'नेहान्स' के बारे में बात की। प्रथम बार इस महान् लेखक ने डा. पाल नेहान्स जो कि ७६ वर्षीय वृद्ध हैं और कोशिकीय चिकित्सा के जनक हैं तथा जिन्होंने दीर्घायु हेतु प्रयत्नशील संसार-भर के प्रसिद्ध लोगों की सहायता की है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

मैं उनसे पिछले साल यहाँ मिला और वे बोले-"यदि तुम मेरे पास आओ, तो मैं तुम्हारे लिए बहुत अच्छा काम करूँगा।" मैंने उन पर विश्वास किया और उन्होंने किया।

इसी कारण श्रीमान् मुघम ने ८४ वर्ष की आयु में संसार की यात्रा की योजना बनायी, जिस आयु में लोग आग के पास लेट कर अपने भविष्य के सपने देखते हैं।

लेकिन वे ब्रिटेन में एकमात्र व्यक्ति थे जो नेहान्स के पास दीर्घायु की खोज में गये थे तथा सदा युवा रहने वाले लोगों की सदा बढ़ रही पंक्ति के एक सदस्य थे।

जब डा. नेहान्स ने स्वर्गीय पोप का बहुत वर्षों तक रोम में इलाज किया, तो जब वे वापस आये तो उनकी डेस्क पर २५०० से अधिक पत्र प्राप्त हुए।

उन्होंने डाक्टर एडेनार (जर्मनी) का इलाज किया। ड्यूक ऑफ विंडसर उन्हें देखने के लिए आये; लेकिन उनका मन बदल गया और उन्होंने भी उपचार कराया।

ग्लोरिया स्वेनसन और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सितारे उनके चिकित्सालय को देखने आये। ब्रिटेन का एक अरबपति उनके पास लन्दन में व्यक्तिगत सलाह लेने जहाज से आया।

डाक्टर नेहान्स कहते थे कि जीवन-काल में वृद्धि की इच्छा उतनी ही प्राचीन है, जितनी मानव-जाति। यह प्रत्येक स्त्री और पुरुष के हृदय में स्थित प्रबल आकांक्षाओं में से एक है, लेकिन मेरा उद्देश्य आयु में वृद्धि ही नहीं, बल्कि उन्हें युवावस्था तथा नवीन जीवन शक्ति प्रदान करना भी है।

"साठ वर्ष," उन्होंने कहा, यह सबसे जटिल आयु है, "यह वह क्षण है जब मेरी चिकित्सा सबसे अच्छे परिणाम देती है। डाक्टर कहते हैं कि इंजेक्शन द्वारा स्त्रियों की झुर्रियाँ समाप्त हो जाती हैं। वृद्धावस्था १० या उससे अधिक वर्षों के लिए दूर चली जाती है।

मांट्रिक्स के पास स्थित अपने प्रिय घर में एक महान् अरबपति द्वारा वान याक की पेंटिंग को देख कर वे बोले-"जब मैं राजाओं और रानियों तथा ऐसे अन्य व्यक्तित्वों के पत्र पाता हूँ जो मुझे हृदय से प्रेम करते हैं, तो उन्हें इस बात का भय न रहे कि उनके रहस्य किसी और को पता लग जायेंगे, इसलिए मैं अपने उत्तर के साथ उनके पत्र भी वापस भेज देता हूँ। मैं भिखारियों और अरबपतियों के साथ समान रूप से घनिष्ठ हूँ; लेकिन मैं अपने रोगियों से बात नहीं कर सकता, मात्र वे ही मुझसे बोलते हैं।"

डाक्टर नेहान्स की विधियाँ ब्रिटेन तथा सारे संसार के चिकित्सा के क्षेत्र में विवादास्पद रही हैं। चिकित्सक तथा वैज्ञानिक जो ऊतकों का अध्ययन करते हैं (उन्हें वृद्धावस्था विशेषज्ञ कहते हैं), वे उनके कोशिकीय चिकित्सा के दावों के प्रति सन्देह व्यक्त करते हैं। लेकिन फिर भी उनके रोगियों की प्रभावशाली सूची में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

कोशिकीय चिकित्सा क्या है? यह पशुओं की जीवित युवा कोशिकाओं का इंजेक्शन है जो मानव-शरीर में लगाया जाता है। यह सिद्धान्त कोई नया नहीं है। तो नेहान्स के काम करने के तरीके में नया क्या है?

लेकिन अकेले डा. नेहान्स ही नहीं हैं जो आयुर्वर्धक रसायन की खोज में लगे हैं।

चिकित्सक और वैज्ञानिक इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी के प्रयोग द्वारा उत्तम जीव रासायनिक परीक्षणों द्वारा मानव-शरीर के ऊतकों और कोशिकाओं में वृद्धावस्था की पहेली को हल करने के प्रयास में लगे हुए हैं।

वे यह पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं कि त्वचा जैसे ऊतक अपनी लचक क्यों खो देते हैं, वृद्ध व्यक्ति की हड्डियों में से कैल्शियम उसकी रक्त वाहिनियों की दीवारों पर क्यों जमा होने लग जाता है।

और वे यह जानना चाहते हैं कि शरीर के निर्माण में ईंट का काम करने वाली कोशिकाएँ वर्षों बाद क्यों क्षीण हो जाती हैं, वसा युक्त हो जाती हैं और रंजित हो जाती हैं?

और मात्र इसे समझने के बाद ही कि कोशिकाओं में होने वाले परिवर्तनों का कारण क्या है? वृद्धावस्था विशेषज्ञ वैज्ञानिक ढंग से योजना बना सकेंगे कि उन्हें कैसे कम किया जाये या उन्हें कैसे रोक दिया जाये।

जन्तुओं पर किये गये परीक्षणों के परिणामों ने कुछ आशा जगायी है। ऐसा देखा गया है कि चूहों को वृद्धि हेतु जितना भोजन आवश्यक है, उससे अधिक दिया जाये, तो वे शीघ्र मर जाते हैं। इसके विपरीत कम भोजन पर रहने वाले चूहे अधिक जीते हैं।

उपर्युक्त तथा अन्य उदाहरणों को देखते हुए डा. हग सिन्क्लेर, जो आक्सफोर्ड के पोषण विज्ञानी हैं, ने चेतावनी दी है कि बच्चों को अधिक भोजन देने से वे जल्दी परिपक्व होते हैं और यह उनकी आयु को कम करता है।

आक्सफोर्ड में डा. आर. बी. फिशर द्वारा चूहों पर किये गये अन्य परीक्षणों में जीवन को लम्बा करने के अन्य मार्ग बताये हैं। चूहे और मनुष्य लगभग १७ प्रोटीन के पदार्थ खाते हैं। इन्हें एमीनो एसिड कहते हैं और इनमें से मात्र १० ही जीवन हेतु आवश्यक हैं। सफेद चूहों को जो भोजन दिया गया, उसमें से अनावश्यक प्रोटीन हटा दिये गये। जिनको पूर्ण भोजन दिया जा रहा था, उनकी अपेक्षा वे जन्तु अधिक जिये, जिनको अनावश्यक प्रोटीन हटा कर आहार दिया जा रहा था।

यदि मनुष्य भी सावधानीपूर्वक अनावश्यक प्रोटीन अपने आहार में से हटा ले, तो वह भी अपने जीवन में कुछ वर्ष और बढ़ा सकता है।

सारे संसार में वृद्धावस्था की मूलभूत प्रक्रिया पर प्रायोगिक अध्ययनों द्वारा यह शोध किया जा रहा है कि स्त्री और पुरुषों को वृद्धावस्था के रोगों से कैसे बचाया जा सके या कैसे उनका उपचार किया जा सके।

बहुत से वृद्धावस्था विशेषज्ञों ने स्वीकार किया है कि हम वृद्धावस्था से नहीं, बल्कि इससे जुड़े रोगों के कारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

लेकिन आश्चर्यजनक रूप से ये रोग आज जितने प्रचलित हैं, उतने कभी नहीं थे। लेकिन कुछ लोग दूसरों से अधिक लम्बा क्यों जीते हैं? यह पहेली अभी भी अनुत्तरित है। जीवन बीमा अधिकारी द्वारा एकत्र किये गये आँकड़ों से सिद्ध होता है कि मोटे व्यक्ति के जीने की आशा उन लोगों की अपेक्षा कम होती है जो अपनी आयु और लम्बाई के अनुरूप वजन वाले होते हैं।

इसीलिए चिकित्सकों द्वारा बहुत से स्त्रियों और पुरुषों को सलाह दी जाती है कि यदि वे अपने भोजन में से कार्बोहाइड्रेट कम कर दें, तो वे अधिक लम्बा जीवन जी सकेंगे।

मेडिकल काउंसिल सोशल यूनिट लन्दन में डा. जेरेमी मारिस और उनके साथियों ने लन्दन बसमेन और हजारों अन्य लोगों के शव परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों से यह प्रभावकारी तथ्य

उद्घाटित किया कि संयमित शारीरिक व्यायाम धमनी के दोषों को दूर करने में सहायक होता है। इसलिए सप्ताहान्त में गोल्फ खेलने के पीछे ठोस वैज्ञानिक कारण है। डाक्टर सेर्ज वोरोनाफ द्वारा मनुष्य पर बन्दर की जनन ग्रन्थियों को लगाने के प्रयास के बाद से आजकल पशुओं पर अंग-प्रत्यारोपण के प्रयोग में बहुत वृद्धि हो गयी है। डाक्टर एरिच जेरिंजर ने ग्लासगो में दिखाया कि जब वृद्ध सफेद चूहों को एक युवा एडरीनल ग्रन्थि प्रत्यारोपित की गयी, तो उनके जीवन-काल में पचास प्रतिशत के लगभग वृद्धि देखी गयी।

जुड़वाँ लोगों को छोड़ कर एक मानव से दूसरे में ऊतकों का प्रत्यारोपण अभी सम्भव नहीं है। लेकिन नेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च में डा. एलन पार्क्स और उनकी टीम ने जन्तुओं पर आकर्षक प्रयोगों द्वारा 'मानव अपनी ग्रन्थियों की आयु में कैसे वृद्धि कर सकता है', इसके लिए अपने सुझाव दिये हैं। डा. पार्क्स ने एक चूहे का अण्डाशय निकाल कर उसे सामान्य ग्लिसरीन से उपचारित करके डीप फ्रीजर में रख दिया। बहुत समय बाद उन्होंने इसे बाहर निकाला, देखा कि यह एक दिन भी बूढ़ी नहीं हुई थी। फिर इसे उन्होंने जिस चूहे से निकाला था, उसे पुनः लगा दिया और यह ग्रन्थि पुनः काम करने लगी। यही उन्होंने नर चूहे के साथ किया। उसके वृषण को निकाल कर ग्लिसरीन से उपचारित करके डीप फ्रीजर में रखा और बाद में जब चूहा थोड़ा बूढ़ा हो गया, तो उसे पुनः लगा दिया।

('हेल्थ' से साभार)

३४. आभामण्डल का संरक्षण और दीर्घायु की प्राप्ति

अब हम मानव के आभामण्डल के कुछ कार्यों को सरल ढंग से समझने का प्रयत्न करते हैं। यह हमारे सूक्ष्म शरीर का हिस्सा है और हमारे भौतिक शरीर के चारों ओर यह आभामण्डल उत्पन्न होता है तथा यह हमारे मन से आ रहे कम्पनों द्वारा नियन्त्रित होता है।

जैसे जब व्यक्ति प्रसन्न रहता है, तो उसके चारों ओर व्याप्त आभामण्डल उसके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले लोगों के लिए प्रसन्नतादायक होता है; लेकिन जब यही व्यक्ति क्रोधित होता है, तो स्वयं ही एक भिन्न प्रकार का आभामण्डल प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार सामान्य लोगों का

आभामण्डल उनके मानसिक व्यवहार तथा उनके शारीरिक स्वास्थ्य के अनुसार बदलता रहता है। जब व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है, तो उसका आभामण्डल अन्य समय से अधिक शक्तिशाली रहता है।

लोगों के एक-दूसरे के प्रति आकर्षक और विकर्षण में भी आभामण्डल की सूक्ष्म क्रियाशीलता महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि जब ऐसे लोग आपस में मिलते हैं, जिनका आभामण्डल एक समान तरंग लम्बाई पर कार्य करता है, तो वे मित्र बन जाते हैं; लेकिन जब वे ही किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जिसका आभामण्डल भिन्न तरंग लम्बाई का होता है, तो वे सरलता से आकृष्ट नहीं होते।

आभामण्डल के सूक्ष्म दृष्टिकोण ने मनोवैज्ञानिकों को यह विश्वास करने हेतु प्रेरित किया है कि परस्पर आकर्षण चुम्बकत्व के कारण उत्पन्न होता है और यह एक-समान आभामण्डल वाले लोगों को पास-पास लाता है तथा यह शारीरिक और मानसिक स्तर पर हमारे प्रेम के प्रकटीकरण हेतु उत्तरदायी है।

अब हम योगी के आध्यात्मिक लोक में जाते हैं। सन्त या उच्च आध्यात्मिक साधक एक भिन्न प्रकार का आभामण्डल उत्पन्न करते हैं, जो सामान्य लोगों के आभामण्डल को प्रभावहीन कर देता है। जब कोई नकारात्मक तथा राजसिक और तामसिक प्रकृति का अतिक्रमण करके गहन ध्यान में स्थित होता है, तो वह स्वाभाविक रूप से पवित्र और उच्च तरंगों को उत्पन्न करता है जो कि एक-समान आभामण्डल वालों को ही नहीं, वरन् मिश्रित या क्षीण आभामण्डल वालों को भी आकर्षित करती हैं।

साधक को योग और आध्यात्मिकता में स्वयं को नीचे गिरने से बचाना चाहिए। जो क्षीण आभामण्डल वाले होते हैं, वे शक्तिशाली आभामण्डल वालों के चुम्बकत्व और तरंगों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं और इसी कारण क्षीण आभामण्डल वाले जितना अधिक सम्भव हो, प्रेम और प्रशंसा प्रदर्शित करने की इच्छा रखते हैं जो कि मुख्यतया भौतिक और दैहिक लोक तक ही सीमित रहती हैं और ये लोग साधक को एक बार पुनः नीचे गिरा देते हैं।

जब भी कभी उच्च आत्माएँ आपस में मिलती हैं, तो वे विषयों में अनासक्त रहती हैं; लेकिन उनमें उच्च तरंगों का बृहत् आदान-प्रदान होता है और उनके आभामण्डल के मिलने से उनके विचारों की शुद्धता और कार्यों की पवित्रता का अनुभव होता है।

वास्तव में यदि एक क्षण के लिए भी इस अनुभव को प्राप्त करना है, तो मनुष्य को ईश्वरीय चेतना तथा जागरूकता का विकास करके ईश्वर के समीप ही रहना होगा और उसे तुरन्त ही आँखें बन्द करके प्राणायाम करना होगा, मन को निरासक्त करके मानसिक रूप से प्रार्थना करनी होगी - "हे भगवान्! मेरे शरीर, मन और आत्मा की रक्षा करो !"

इसलिए हे साधको! अपने आभामण्डल को शक्तिशाली बनाने हेतु सदा प्रयत्नशील रहें तथा उसके द्वारा आप बहुत ही लम्बा जीवन प्राप्त करेंगे, जिससे आप साधना करके ईश्वर का साक्षात्कार कर सकेंगे।

३५. कुछ शतायु जनों का जीवन

डाक्टर धुन्ध केशव कर्वे

महर्षि धुन्ध केशव कर्वे का जन्म १८ अप्रैल १८५८ में रत्नागिरि जिले के एक छोटे-से गाँव में हुआ था। उनके जन्म-स्थान मुरुद में उन्होंने अपने जीवन का प्रथम समाज-सेवा का पाठ पढ़ा। वे जब बालक ही थे, तो वे वहाँ स्थित दुर्गा देवी के मन्दिर में शाम के समय एकत्र होने वाले रहवासियों को समाचार-पत्र पढ़ कर सुनाते थे। बाद में उन्होंने अपने शिक्षकों द्वारा स्थापित सहकारी दुकान में काम किया। सन् १८८६ में उन्होंने मुरुद फंड जो वहाँ के रहवासियों के हितार्थ प्रारम्भ किया गया था, उसका कार्यभार सँभाला। बाद में उन्होंने वहाँ स्थित विद्यालय भवन के पुनर्निर्माण हेतु प्रोत्साहन दिया।

चूँकि वे एक निर्धन परिवार में जन्मे थे, इस कारण उन्हें सामान्य शिक्षा भी प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होंने १६ वर्ष की आयु तक मात्र अक्षर ज्ञान ही किया था। लेकिन अपने साहस, योग्यता आदि गुणों के कारण उन्होंने २७ वर्ष की आयु में इफिन्सटोन महाविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। अँगरेज लेखक सैम्युअल जानसन की तरह उन्होंने किसी भी प्रकार के दान-जैसे

निःशुल्क भोजन आदि को स्वीकार नहीं किया; बल्कि वे अपने स्वयं के प्रयासों-जैसे व्यक्तिगत शिक्षा और सादा जीवन आदि पर पूर्णतः निर्भर रहे।

स्नातक हो जाने के पश्चात् उन्होंने मुम्बई के कुछ विद्यालयों में गणित के शिक्षक के रूप में सन् १८९१ तक कार्य किया। जब डेक्कन शिक्षा समिति द्वारा फर्गुसन महाविद्यालय में गणित के व्याख्याता के रूप में उनकी सेवाओं की माँग की गयी, तो वे उस समिति के आजीवन सदस्य बन गये। इस समय उन्होंने स्त्रियों के लिए विशेष रूप से विधवाओं की सामाजिक स्थिति को सुधारने हेतु बहुत अधिक रुचि ली और अन्य लोगों के सामन दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने सन् १८९१ में अपनी प्रथम पत्नी के देहावसान के बाद एक विधवा स्त्री से विवाह किया, जब कि इसके कारण उन्हें समाज के व्यंग्य, कटाक्षों तथा अपमान का भी सामना करना पड़ा। उन्होंने सन् १८९२ में विधवा विवाह समिति की स्थापना की तथा सन् १८९६ में अपनी पत्नी की सहायता से, जिसे उन्होंने पढ़ाया भी था, हिन्दू विधवा समिति की स्थापना की और सन् १८९९ में विधवाश्रम की स्थापना की।

विधवा विवाह समिति के लिए काम करते समय उन्हें विधवाओं के लिए शिक्षा की सुविधा की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसलिए उन्होंने पूना में सन् १८९६ में अनन्त बालिकाश्रम स्थापित किया। तीन वर्ष बाद यह आश्रम हिंगणे में स्थानान्तरित हो गया और वहाँ इसका पूर्व की तुलना में अधिक विकास हुआ। सन् १९०७ में उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिए महिला महाविद्यालय प्रारम्भ किया। यह उस आश्रम से भिन्न था जो कि विधवाओं की शिक्षा हेतु प्रारम्भ किया गया था। यहाँ पर लड़कियों और विवाहित स्त्रियों को भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। जापान के महिला विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर केशव कर्वे को भारतीय महिला विश्वविद्यालय प्रारम्भ करने की प्रेरणा हेतु पत्र दिया गया था। लगभग २५ वर्षों तक श्री कर्वे ने विश्वविद्यालय के लिए अत्यन्त उत्साह और शक्ति के साथ काम किया।

उन्होंने सम्पूर्ण भारत तथा सम्पूर्ण विश्व की यात्रा की। उन्होंने महिला विश्वविद्यालय के उद्देश्य और विषयों के सम्बन्ध में व्याख्यानों और प्रचार द्वारा चन्दा एकत्रित किया। वे सन् १९३२ में महिला विश्वविद्यालय के उप-कुलपति नियुक्त किये गये। महाराष्ट्र ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत देश में उनका बहुत सम्मान किया गया।

उन्हें चार विश्वविद्यालयों द्वारा शैक्षणिक सम्मान प्रदान किया गया। सन् १९४२ में बनारस विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें सम्माननीय उपाधि डी.लिट. प्रदान की गयी। सन् १९५१ में पूना विश्वविद्यालय ने उन्हें एल-एल.डी. की उपाधि प्रदान की। सन् १९५४ में एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डी. लिट. की उपाधि प्रदान की गयी और सन् १९५७ में मुम्बई विश्वविद्यालय ने उन्हें एल-एल.डी. की उपाधि प्रदान की। सन् १९५५ तथा १९५८ में भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मविभूषण' और 'भारतरत्न' से सम्मानित किया।

महर्षि कर्वे मूल रूप से एक प्रवर्तक थे। उनके पास मार्गदर्शक के सभी गुण थे। वे महान् आस्था और दृष्टि के धनी थे। उन्हें अपने जीवन-काल में देखे समस्त स्वप्नों को साकार होते देखने का सुख प्राप्त था। वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ी के लिए 'सादा जीवन, उच्च विचार' के वे जीवन्त उदाहरण थे। उन्हें प्राचीन काल का ऋषि कहा जा सकता है।

उनका सौ वर्षीय जीवन क्रियाशीलता से पूर्ण था। उन्होंने विधवाओं को नयी आशा और नया जीवन प्रदान किया। स्त्रियों को उन्होंने शिक्षा का प्रकाश दिया। वे शिक्षा को ग्रामीणों के द्वार तक ले कर गये और मानव-एकता का दीप जलाया।

('सेविका' के सौजन्य से)

डाक्टर एम. विश्वेश्वरैया

डाक्टर विश्वेश्वरैया ने अपने ८८ वें जन्म-दिवस पर टिप्पणी करते हुए कहा था- "वृद्धावस्था ने अपना परिचय-पत्र बहुत लम्बे समय पूर्व मेरे पास छोड़ा था; पर मैंने हमेशा यही कहा 'घर पर नहीं हूँ।"

इन प्रसिद्ध शतायु व्यक्ति का जन्म १५ सितम्बर १८६१ में मैसूर राज्य के एक गाँव में हुआ था। डाक्टर विश्वेश्वरैया दीवान थे। डाक्टर विश्वेश्वरैया ने मैसूर की औद्योगिक, कृषि तथा शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति में महान् योगदान दिया। डाक्टर विश्वेश्वरैया का जीवन कठोर परिश्रम तथा अथक कार्य का सतत गीत है। उनके पास बूढ़े होने का समय ही नहीं था। उनका सम्पूर्ण जीवन मानव मात्र की सेवा हेतु समर्पित था; इसलिए वे सदा युवा रहे।

उनकी जन्मशती पर एक बहुत बड़ी पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें डाक्टर विश्वेश्वरैया के अत्यन्त प्रशंसनीय कार्यों का वर्णन था। एक शब्द में कहें-मैसूर के उद्योग, कृषि, शिक्षा के विकास हेतु प्रत्येक दृष्टान्त के पीछे जो आत्मा थी, वह डाक्टर विश्वेश्वरैया थे।

उन्होंने ही सन् १९१६ में मैसूर विश्वविद्यालय प्रारम्भ कराया। वे ही वह प्रथम व्यक्ति थे जो मैसूर न्यायपालिका से प्रशासन को अलग करने का प्रस्ताव लाये। राज्य की ६ वर्ष की (सन् १९१२ से १९१८ की) दीवानी में उन्होंने बहुत से समाज-सुधारकों का परिचय कराया। इस प्रकार उनके भीतर वास्तुविद और राजनीतिज्ञ का अनूठा मिश्रण था। वे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने योजनाबद्ध प्रबन्धन के लाभों को बताया।

उन्होंने अपने दीर्घ जीवन के रहस्य को निम्नानुसार बताया :

१. नित्य एक निश्चित समय पर भोजन करना।

२. औसत ६ से ८ घण्टे सोना।

३. घर से बाहर या आफिस में ८ घण्टे काम करना।

४. शाम के समय भ्रमण के रूप में व्यायाम (कम-से-कम

३ से ४ मील)।

५. सरल जीवन।

६. दीर्घायु हेतु दृढ़ निश्चय।

एम. वी. सुब्बैया

श्री एम. वी. सुब्बैया पश्चिमी गोदावरी जिले के एक कृषक थे। वे सौ वर्ष से अधिक आयु तक जिये। उनके तीन बेटे, दो बेटियाँ और छब्बीस पोते-पोतियाँ तथा नाती-नातिनें थे।

इस आयु तक भी वे बहुत क्रियाशील थे और आन्ध्र प्रदेश से ऋषिकेश की थकान-भरी यात्रा करने में सक्षम थे।

वे अपनी आदतों में नियमित थे और आज भी आनन्दपूर्वक दिन में तीन बार भोजन करते हैं और गहरी नींद सोते हैं।

उनका मामला शायद वंशानुक्रम का था; उनके पिता भी ११० वर्ष जिये।

श्री गंगेहर महाराज

जब मैं सन् १९२४ में ऋषिकेश आया, तब श्री गंगेहर महाराज दिखने में वृद्ध व्यक्ति दिखायी देते थे। उनके बाल सफेद और चेहरा झुर्रिदार था। वे तब ७० वर्षीय वृद्ध थे।

किन्तु वे आज भी शक्तिशाली और स्वस्थ हैं तथा आज भी स्वर्गाश्रम से ऋषिकेश तक तेज धूप में पैदल जाते हैं (यह दूरी करीब दो मील होगी)।

उनकी दीर्घायु का श्रेय योग साधना को जाता है। वे बिना सुख- सुविधा तथा अच्छे भोजन के पूर्ण आत्म-संयमी जीवन व्यतीत करते हैं।

१०७ वर्षीय भीमसेन

राजधानी में आज कितने लोग हैं जो १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के साक्षी हैं तथा किसने १ रुपये में ३ सेर घी और ४२ सेर दूध खरीदा है ?

और ऐसा व्यक्ति मात्र एक ही है। वह है १०७ वर्षीय भीमसेन जो अपने भाई के पोते के साथ दिल्ली जंक्शन के पास रेलवे क्वार्टर में अपने दिन गुजार रहा है।

उसके पूरे चेहरे पर घनी दाढ़ी है; लेकिन माथे पर झुर्रियाँ नहीं हैं और अपनी आयु के हिसाब से वह बहुत अधिक शक्तिशाली है। उसका शरीर समय के कारण थका हुआ नहीं लगता।

भीमसेन को मात्र एक ही कष्ट है कि उसका एक दाँत जो वर्षों पहले गिर गया था, उसके स्थान पर बाल आ गये हैं और इससे उसे असहजता का अनुभव होता है। उसने बहुत से चिकित्सकों को भी दिखाया; पर वे बोले कि हमने दाँत पर बाल उगते हुए कभी नहीं देखे। उसकी नेत्र-ज्योति बहुत तीव्र है। बस, दायीं आँख में थोड़ी कमजोरी है।

स्वस्थ शरीर के लिए उपाय : भीमसेन इतना स्वस्थ क्यों हैं? इसका श्रेय वे अत्यधिक मात्रा में किये जाने वाले व्यायामों को देते हैं और इनको वे उत्साहपूर्वक करते हैं। इसमें वे १५०० दण्ड, २००० बैठक और १ घण्टे शीर्षासन करते हैं।

भीमसेन आगरा के प्रसिद्ध मुक्केबाज रहे हैं। वे आगरा में पैदा हुए और १०० वर्ष तक वहीं रहे। और आज भी उनको विश्वास है कि अपने समान एक वे ही हैं। वे घोषणा करते हैं- "मुझे १५ सेर दूध, १ टिन घी और १ सेर बादाम दो, तो मैं आपके किसी भी प्रिय मुक्केबाज को ललकार सकता हूँ।"

उनकी युवावस्था में भोजन सस्ता था और वे भरपूर आहार लेने में सक्षम थे। वे कहते हैं- "हमारे दिनों में हमारे पास खूब सारा धन खर्च करने को नहीं था; लेकिन हमारे पास भरपूर भोजन था। अब चीजें कितनी अस्त-व्यस्त हो गयी हैं।" आज उनका भोजन मात्र १ सेर दूध, दाल और आठ रोटी हैं।

वे अपने दीर्घ और निरोग जीवन का कोई रहस्य नहीं बता सकते। वे यह भी नहीं जानते कि उनके आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने से यह सम्भव हुआ है।

भीमसेन को अपने जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है-कैसे उन्होंने २० डकैतों के साथ अकेले संघर्ष किया और कैसे उन्होंने उन मुक्केबाजी के दाँवों के द्वारा नये उभरते मुक्केबाजों को हराया था जिनको

आजकल के अधिकांश मुक्केबाज नहीं जानते। और साथ ही पण्डित नेहरू के इलाहाबाद स्थित आवास पर २३ वर्ष पूर्व वे गये थे, यह घटना उन्हें अच्छी तरह याद है।

यह पूछने पर कि आप अभी कितने वर्ष और जीना चाहते हैं? भीमसेन जोर से हँस कर कहते हैं-"यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन, मैं इतनी आसानी से जाने वाला नहीं हूँ। मृत्यु को मात देने हेतु मैं अपने सभी मुक्केबाजी के दाँव प्रयोग करूँगा।"

('हिन्दुस्तान टाइम्स', १३-७-१९५६ से साभार)

३६. वेदों में दीर्घायुष्य

प्रस्तावना : अति प्राचीन समय से मनुष्य अपने मन के तत्त्वज्ञान की ओर झुकाव के साथ जीवन और अस्तित्व के दो मूल प्रश्नों के उत्तर खोज रहा है, वे हैं-पहला इस भव्य किन्तु आश्चर्यजनक प्रकृति का यथार्थ सत्य क्या है? और दूसरा व्यक्ति स्वयं को शारीरिक और मानसिक रूप से कैसे स्वस्थ रख सकता है, ताकि वह इस अन्तिम सत्य के पीछे जो कठिन पहेली है, उसे हल कर सके।

बाद वाला प्रश्न बहुत-सी विधाओं को जन्म देता है, इनमें से एक है श्वसन विधा। शरीर में जीवन की क्रियाविधि सूक्ष्म प्राण या जीवनी शक्ति द्वारा चलती है। विभिन्न जीवनी शक्तियों को शरीर में भिन्न-भिन्न कार्य करने पड़ते हैं। स्वस्थ शरीर और मन को बनाये रखने के लिए इन विभिन्न शक्तियों को एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर लयबद्ध रूप से काम करना पड़ता है। इसका अर्थ है-यदि कोई स्वस्थ और दीर्घायु होना चाहता है, तो उसे इन प्राणों पर नियन्त्रण करना चाहिए तथा उन्हें एक-दूसरे के साथ लयबद्ध रूप से काम करने देना चाहिए।

शरीर में काम करने वाले विभिन्न प्राणों में से जो प्राण अत्यन्त सरलता से नियन्त्रित होते हैं, वे प्राण हैं वह जीवनी शक्ति जो श्वास भीतर लेना और अपान को चलाती हैं तथा दूसरी जो उच्छ्वसन को नियन्त्रित करती है। इन दोनों का नियन्त्रण तथा इन्हें लयबद्ध रूप से चलाना व्यक्ति को अन्य प्राणों को नियन्त्रित और लयबद्धता से चलाने की योग्यता प्रदान करता है।

वेदों के निम्न मन्त्रों में असुनीति या श्वसन क्रिया के अभ्यास का वर्णन है :

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः

पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।

ज्योक पश्येम सूर्यमुच्चरन्त-

मनुमते मृडया नः स्वस्ति ।।

(श्रृं./१६/५१६)

यह मन्त्र असुनीति, जीवन पोषण के सिद्धान्त, दृष्टि की सुरक्षा, जीवन और शारीरिक सुखों की रक्षा हेतु प्रार्थना है। इस प्रार्थना से निम्न लाभ स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं :

१. दृष्टि यदि कमजोर हो गयी हो, तो पुनः प्राप्त हो जाती है।

२. जब जीवन का क्षय होने लगता है, तो मनुष्य इसमें सुधार कर वृद्धि कर सकता है।

३. शरीर में ऊर्जा की कमी की पूर्ति हो जाती है।

असुनीति का अर्थ वे जीवन संरक्षक सिद्धान्त हैं, जिनका मनुष्य को पुनर्यौवन-प्राप्ति तथा दीर्घायु-प्राप्ति हेतु अभ्यास करना चाहिए। यह विधा श्वास अन्दर लेना और उच्छवसन जो सभी प्राणियों के शरीर में जीवनी शक्ति असु या प्राण हैं, के क्रियात्मक नियन्त्रण का स्पष्ट वर्णन करती है।

यह मन्त्र हमें अपने जीवन के तरीकों को सूर्य के साथ समायोजित करने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है, जिससे हम बहुत से सूर्योदय देख सकें; क्योंकि ये ही सभी प्राणियों के असु या प्राणों के शासक और संचालक हैं।

द्वाविमौ वातो वात आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ।।

(ऋ./१०/१३७/२)

सभी प्राणियों में जीवन का दो विधियों से पोषण होता है-एक अन्तःश्वसन और दूसरी श्वास बाहर निकालना। इन दोनों वायुओं के द्वारा प्राणवायु शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है और अपान वायु सभी प्राणियों के शरीर में से गन्दगी को बाहर निकालती है। ये दोनों क्रियाएँ दोष और

अशुद्धियाँ बाहर निकालती हैं तथा व्यक्ति को शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती हैं। इसीलिए व्यक्ति जीवित रहता है।

वात आ वातु भेषजं
शम्भु मयोभु नो हृदे
प्राण आयूंषि तारिषत् ।।
(ऋ./१०/१८६/१)

वास्तव में शुद्ध वायु इस विश्व के समस्त प्राणियों के लिए अचूक औषधि है। यह शान्ति देती है, आनन्द प्रदान कर तथा व्यक्ति को निरोग बना कर हृदय को प्रकाशित करती है।

आ वात वाहि भेषजम् यि
वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्चभेषजो
देवानां दूत ईयसे ।।
(ऋ./१०/१३७/६)

क्योंकि शुद्ध वायु नवजीवन देती है और शरीर की व्याधियों को दूर करती है, यह सारी रोग-निवारक औषधियों का सार है। इस शुद्ध वायु को श्वास द्वारा लेने से हमारे शरीर की समस्त अशुद्धियाँ प्रदूषित वायु के रूप में बाहर चली जाती हैं। इसलिए शुद्ध वायु वास्तव में ईश्वर की प्रतिनिधि है। इस कारण प्रत्येक को इस शुद्ध वायु में, जो कि जीवन का रस है और समस्त रोगों को दूर रख कर अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखती है, ऐसी शुद्ध वायु में श्वास लेना चाहिए।

वाङ्म आसन् नसो प्राणः चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्।।
(सू. ६०-१)

ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ।।
(सू. ६०-२)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ।।
(सू. ६१-१)

प्रियम मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मां कृणु
प्रियं सर्वस्य पश्यतः उतशूद्र उतार्ये ।।
(सू. ६२-१)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ।।
(अथ. कां. १९ सू. ६३, सू. ६०-६३)

हमें अपने मन को अपने शरीर की अच्छी देखभाल की महान् आवश्यकता हेतु प्रेरित करना चाहिए, जिससे हम अपने कर्तव्यों का भली प्रकार निर्वाह कर सकें और जीवन का आनन्द उठा सकें। इस मन्त्र में जीवात्मा शरीर के विभिन्न अंगों के सही ढंग से काम करते रहने हेतु अत्यन्त उत्कण्ठा से प्रार्थना करता है।

उसकी वाणी शक्तिशाली होनी चाहिए, जिससे वह अन्यों के सामने स्वयं को भली-भाँति व्यक्त कर सके तथा अन्यों को जब नियन्त्रित करने की आवश्यकता हो, तो वह उन्हें नियन्त्रण में ले सके।

वह जिस संसार में रहता है, उसे समझने तथा उसका आनन्द उठाने हेतु अच्छी नेत्र-ज्योति आवश्यक है।

नासिका द्वारा प्राणों के उचित आवागमन के बिना यह शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता।

क्षय रहित, स्वस्थ दाँतों के बिना न तो भोजन का भली प्रकार आनन्द उठाया जा सकता है, न ही स्वास्थ्य ही अच्छा रह सकता है।

काले बाल जीवनी शक्ति का चिह्न हैं। सफेद बालों से शरीर का आकर्षण कम होता है। शरीर के सौन्दर्य के बिना, शरीर में जीवनी शक्ति के बिना कौन-सा कर्तव्य पूरा किया जा सकता है और जीवन का क्या आनन्द उठाया जा सकता है।

इसी प्रकार जब व्यक्ति के हाथों, पैरों और जंघाओं में भरपूर शक्ति और ऊर्जा हो तथा जब उसके पैर दृढ़ और स्थिर होंगे, तभी और मात्र तभी वह जीवन के आनन्द को उठा सकता है और साथ-ही-साथ जीवन के आवश्यक कर्तव्यों को पूर्ण कर सकता है।

इसलिए व्यक्ति उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा दृढ़-स्थिर हृदय, अच्छी नेत्र-ज्योति, अच्छी श्रवण शक्ति, दाँतों आदि के लिए तथा अपने अंगों की शक्ति और ऊर्जा के लिए प्रार्थना करता है।

वह अपने शरीर में पूर्ण जीवन-क्षमता हेतु प्रार्थना करता है। इस प्रकार वह जीवन को उसके परमानन्द धाम की तरह अपने मारक शत्रुओं को सहन करते हुए आनन्द उठाने की इच्छा रखता है।

प्रार्थना करने और जीवनी शक्ति से पूर्ण आकर्षक शरीर को प्राप्त करने के बाद भी व्यक्ति को यह लगता है कि जीवन का पूर्णता के साथ आनन्द उठाने के लिए यह सब पर्याप्त नहीं है। उसे लगता है, जैसे उसके स्वयं तथा जीवन के आनन्द के मध्य कोई तन्तु खो गया है।

यह तन्तु है स्वयं और उसके चारों ओर की परस्पर सौहार्दता। यह उसके अन्तर के संसार और बाह्य जगत् के मध्य सौहार्दता है।

इसलिए वह अब पुनः सभी को एक करने हेतु प्रार्थना करता है, जिससे सबमें एकता बनी रहे तथा उसके और आस-पास के सभी लोगों के मध्य सौहार्दता बनी रहे।

लेकिन इसके बाद भी उसे लगता है कि जीवन का आनन्द उससे कोसों दूर है। लेकिन इस समय सुख की माला का खोया तन्तु मात्र उसके स्वयं के द्वारा ही नहीं, वरन् उसके चारों ओर के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति कर्तव्यों के निर्वहन में रहता है।

इसलिए वह अब अच्छे कर्म, जो सभी के लिए लाभदायक हों, करने में व्यस्त हो जाता है तथा सभी प्रबुद्ध जनों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करता है।

इस प्रकार दीर्घायुष्य, कीर्ति, सम्पूर्ण मानव जाति की प्रसन्नता और इसके मार्गदर्शकों में वृद्धि होती है। शान्तिपूर्ण तथा प्रसन्नतापूर्ण जीवन मनुष्यों तथा प्राणियों के मध्य स्थापित हो जाता है।

अब मनुष्य सन्तुष्ट हो जाता है। इस आनन्द की कोई सीमा नहीं होती। अब वह परमानन्द के साथ जीवन बिताता है।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम्। (अथ. कां १६, सू. ६.)

आज के दिन हम विजयी हुए हैं। आज हम सभी प्रकार के भौतिक साधनों से समृद्ध हैं। आज हम उन पापों से भी मुक्त हो जायें, जो हमारे परमानन्द का नाश करते हैं।

यह मन्त्र मनुष्य के संघर्षों तथा उसके अस्तित्व और निर्माण के सत्य के पीछे जो पहेलियाँ हैं, उनको व्यक्त करता है। व्यक्ति उन मूल सिद्धान्तों की खोज प्रारम्भ करता है जो उसके विकास पर शासन करते हैं, वह उन्हें समझता है तथा उनको जीवन में वास्तविक सफलता हेतु स्वीकार करता है। व्यक्ति को अपनी इन्द्रियों को पवित्र, शक्तिशाली, प्रवेश करने योग्य बनाये रखना चाहिए और उन्हें जीवन की सकारात्मक अभिलाषाओं के साथ निर्देशित करना चाहिए।

तब वह उन विचारों का महान् आस्था और लगन के साथ पालन करेगा। इन समस्त संघर्षों का परिणाम मन और विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों pi पूर्ण नियन्त्रण तथा प्रकृति के मूल तत्त्वों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

अब वह इस नश्वर जीवन और अस्तित्व की समस्त बेड़ियों से परे होता है। उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं होती। उसकी सम्पत्ति की कोई सीमा नहीं होती। वह सभी पापों से परे होता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं की कीर्ति के शिखर को प्राप्त कर लेता है।

इस परमानन्द के प्रदेश में जीवात्मा अपनी भावनाओं को उक्त मन्त्र द्वारा व्यक्त करता है।

जब कुछ सच्चे भक्तों द्वारा सफलता के बारे में उससे प्रश्न किया जाता है, तो वह अपनी साधना जिससे उसने सत्य का साक्षात्कार किया तथा जो फल उसे प्राप्त हुए और उसे इस स्थिति में लाये, उनका वर्णन करता है।

उसके शरीर की समस्त व्याधियाँ उसे मुक्त कर देती हैं और उसके मन को शान्ति प्राप्त करने की आज्ञा दे देती हैं। वह प्रसन्नता व्यक्त करता है और अपने मन को धन्यवाद देता है, जिसने उसकी हर परिस्थिति में सहायता की और इस मार्ग के रहस्यों को समझने योग्य बनाया, जिस पर वह धीरे-धीरे चल रहा था। उसके बाद के परिणामों को वे जानते हैं।

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परागात्।

सभी प्राणियों में जीवन की क्रिया दो बलों द्वारा चलती है। एक अंगों का निर्माण करके उसकी देख-रेख करता है तथा दूसरा अंगों को नष्ट करता है और समाप्त करता है। इस प्रकार प्राण के इन दो बलों द्वारा जीवन चलता रहता है। पहले को प्राण तथा दूसरे को अपान कहते हैं। जब तक प्राण प्रबल रहता है, जीवन का अस्तित्व रहता है और जब अपान शरीर पर अधिकार कर लेता है, तो यह इसे छिन्न-भिन्न करके नष्ट कर देता है।

लेकिन शरीर को चलाने के लिए दोनों को अपने कामों को एक-दूसरे के साथ समन्वय करके चलना चाहिए।

इस कारण इस मन्त्र द्वारा व्यक्ति दोनों जीवन बलों-प्राण तथा अपान को इस शरीर में रहने तथा समन्वयपूर्वक कार्य करने की प्रार्थना करता है, जिससे वह जीवन के विभिन्न कार्यों और जीवन की क्रियाओं को अधिक लाभप्रद ढंग से संचालित कर सके।

वेदों में आगे लिखा है :

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः -
षष्टानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि
यैरैव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।

जीवात्मा पंच इन्द्रियों (दृष्टि, श्रव्य, घ्राण, वाक् तथा स्पर्श) तथा छठी इन्द्रिय मन के द्वारा सभी क्रियाओं को ग्राह्य और सम्पन्न करता है।

जीवात्मा स्वयं को ज्ञानेन्द्रियों तथा मन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है। और इन छहों इन्द्रियों का मिलन स्थल है हृदय।

जब तक पूर्ण ज्ञान तथा शुद्ध भाव द्वारा ये इन्द्रियाँ पूर्णरूपेण शुद्ध और तीक्ष्ण नहीं होंगी, वे जीव को कुमार्ग पर तथा उसके कर्मों को अवांछित परिणामों की ओर ले जायेंगी। इस कारण वह कहता है कि हमें अपनी इन्द्रियों और अपने मन को शुद्ध तथा शक्तिशाली बनाये रखने का यत्न करना चाहिए और उन्हें पूर्ण ज्ञान तथा शुद्ध भावनाओं द्वारा निर्देशित करना चाहिए, जिससे वहाँ शान्ति बनी रहे और व्यक्ति तथा सभी की सामूहिक प्रगति हो।

वेद मन के बारे में व्याख्या करते हैं :

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्म संशितम्
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।
(अथ.कां. १, सूत्र १-४)

इस मन्त्र में पवित्र मन की शक्ति की व्याख्या की गयी है। जीव द्वारा तभी कार्य मन द्वारा किये जाते हैं तथा वह स्वयं को मन के द्वारा ही व्यक्त करता है। यह मन जब बुद्धि द्वारा निर्देशित होता है, तो बहुत ही शक्तिशाली हो जाता है और योग्य बन जाता है।

जब तक मन मूलभूत स्वच्छ विचारों द्वारा निर्दोष नहीं कर लिया जाता, यह मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाता है, जिसके परिणाम अवांछित होते हैं।

मात्र मन के द्वारा ही इस लोक और परलोक में उपलब्धियाँ मिलती हैं। मन अकेला ही लोगों को पास-पास लाने तथा उनमें मित्रता स्थापित करने में सक्षम है तथा यह ही उनकी मित्रता को तोड़ने वाला भी है।

इसलिए हमें अपने भीतर पूर्ण बुद्धि द्वारा निर्देशित करके मन को शुद्ध और शक्तिशाली बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वहाँ शान्ति हो और व्यक्ति तथा सभी की सामूहिक प्रगति हो सके।

इसके बाद आगे वेद वाणी की शक्ति के बारे में बताते हैं :

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ।।
(अथ. कां. १९, सू.९-३)

इस मन्त्र में वाणी की शक्ति के बारे में कहा गया है। वाणी आत्मा का प्रत्यक्ष अभिव्यक्तिकरण है। यह वाणी जब पूर्ण ज्ञान द्वारा निर्देशित होती है, तो यह बहुत शक्तिशाली और हृदयग्राही हो जाती है।

जब तक वाणी का अभिव्यक्तिकरण स्पष्ट तथा द्वेष आदि से रहित नहीं होगा, यह वाक्-युद्ध को अभिप्रेरित करेगा और अवांछित परिणामों में समाप्त होगा।

इसलिए हमें अपने भीतर स्पष्ट, मधुर और शक्तिशाली वाणी का विकास करना चाहिए।

वाणी के द्वारा ही व्यक्तियों के मध्य मित्रता और शत्रुता होती है।

अब वेद द्वारा एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात की व्याख्या की जा रही है, जिसका अत्यन्त सावधानी और गम्भीरतापूर्वक अनुकरण किया जाना चाहिए।

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीम्
ब्रह्मजूतामृषिस्तुताम्
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिः देवानामवसे हुवे।।

इस मन्त्र में जीव बुद्धि की महानता और उपयोगिता की स्तुति करता है।

इसके द्वारा मन ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा सभी कार्यों को सम्पन्न करता है। यह बुद्धि के निर्देशन के बिना कर्मों को उचित प्रकार से नहीं कर सकता है।

बुद्धि वह पतवार है जो मन रूपी जहाज को उचित गन्तव्य तक ले कर जाती है। इनके द्वारा मन शुद्ध और ज्ञान से समृद्ध होता है।

प्राचीन ऋषि इस बुद्धि के महत्त्व को अच्छी प्रकार से जानते थे। वे बुद्धि को प्राप्त करने हेतु प्रार्थना, सेवा और त्याग करते थे।

यहाँ तक कि वे पुरुष जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे भी बुद्धि मात्र हैं।

ऐसी बुद्धि जो देवों की रक्षा का कारण है और जो प्रार्थना, पूजा तथा सभी प्रकार से प्राप्त करने योग्य है, मैं इस बुद्धि से सदैव मेरे भीतर निवास करने तथा मेरे मन को निर्देशित करने की प्रार्थना करता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्।